गांधी-मार्ग

मार्च-अप्रैल 2020

वे दस दिन !

महात्मा गांधी ○ विनोबा
मीरा बहन ○ राजमोहन गांधी

12 महीने... तो आपके नाम उधार हैं 12 सदस्य!

बीत गया है पूरा एक साल... मतलब 12 महीने... मतलब 12 आजीवन ग्राहक!!

गांधी-मार्ग आपने बनाया क्या?

बहुत बड़ी है आपके संपर्कों की दुनिया!
अपना परिवार है; अपने रिश्तेदारों का परिवार है; दोस्त-मित्र हैं और फिर उनका परिवार है!

आपके संपर्क का संसार तो इससे भी बड़ा है अध्यापक, प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर, व्यापारी, पत्रकार-लेखक, दूसरी विधा के कलाकार। हर महीने के पहले सप्ताह म. अपने संपर्कों की इस विशाल दुनिया म. गोता लगाएं और निकाल लाएं 'गांधी-मार्ग' का एक आजीवन सदस्य! मतलब है मात्र 1 हजार आजीवन सदस्यता का रुपये... नाम, पूरा पता, मोबाइल नंबर के साथ वह रकम हम. गांधी शांति प्रतिष्ठान के नाम चेक से भेजिए... नहीं तो मनिऑर्डर कीजिए... नहीं तो ऑनलाइन ट्रांसफर कीजिए (गांधी शांति प्रतिष्ठान, केनरा बैंक, डीडीयू मार्ग, नई दिल्ली; खाता नंबर : **0158101030392; आइएफएससी कोडः CNRB0000158**) ऑनलाइन पैसा भेजते ही उसकी रसीद हम. व्हाट्सएप से **9990304448** नंबर पर भेज द.।

बस, अब आपका काम पूरा हुआ और हमारा काम शुरू हुआ.
आपकी भेजी रकम व सदस्य का विवरण मिलते ही हम आपको भी सूचित कर.गे, आपकी तरफ से एक पत्र लिख कर अपने नये सदस्य को रसीद के साथ भेज.गे; और फिर अगले 10 वर्षों तक, हर दूसरे महीने **'गांधी-मार्ग'** का नया अंक आपकी तरफ से उनके दरवाजे पर दस्तक देगा!

उधार रखना बुरी बात है! अपना उधार चुकाइए।

गांधी-मार्ग

अहिंसा-संस्कृति का द्वैमासिक
वर्ष 62, अंक 2, मार्च-अप्रैल 2020

गांधी शांति प्रतिष्ठान

1. **इतिहासः 1**...वे दस दिन!	महात्मा गांधी	3
2. **इतिहासः 2** संविधान सभा में नागरिकता...	दुनू राय	33
3. **इतिहासः 3** इतिहास के गलत विद्यार्थी	राजमोहन गांधी	36
4. **नागरिकताः** हिमालय-सा दिमाग... दिल	विनोबा	40
5. **आजः** देश के तहखानों में	रवींद्र रुक्मिणी पंढरीनाथ	46
6. **यादें :** "आओ, बा से मिलने चलें!"	मीरा बहन	54
7. **टिप्पणियां**		57
8. **पत्र**		61
9. **अंत में**		64

आवरण : प्रार्थना की पंचायत! बापू ने प्रार्थना को सामूहिक, सार्वजनिक और सर्वधार्मिक बनाकर बौद्धिक क्रांति का आगाज किया था। उनकी प्रार्थना कही जाती थी प्रार्थना-सभा! एक काल्पनिक पेंटिंग।

वार्षिक शुल्क : भारत में 200 रुपये, दो वर्ष के 350 रुपये, आजीवन-1000 रुपये (व्यक्तिगत), 2000 रुपये (संस्थागत), एक प्रति का मूल्य 20 रुपये, डाक खर्च निःशुल्क। दो माह तक न मिलने पर शिकायत लिखें। अपना शुल्क चेक, बैंक ड्राफ्ट, मनीऑर्डर द्वारा 'गांधी शांति प्रतिष्ठान' के नाम भेजें। ऑनलाइन भुगतान के लिए केनरा बैंक खाता नं. 0158101030392 IFSC CODE : CNRB 0000158.

संपादन : कुमार प्रशांत **प्रबंध :** मनोज कुमार झा **प्रसार :** भगवान सिंह

गांधी शांति प्रतिष्ठान, 223 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-110002 के लिए अशोक कुमार द्वारा प्रकाशित

फोन : 011-2323 7491, 2323 7493, फैक्स : 011-2323 6734

Email: gmhindi@gmail.com

मुद्रक : नीता प्रेस, 3574- गली जटवारा, नियर सबलोक क्लीनिक, दरियागंज, दिल्ली-110002, फोन नं. 8800646548

इतिहास-1

...वे दस दिन!

उनके जीवन के वे अंतिम 10 दिन थे— फिर न वे रहे, न वैसे दिन रहे! 13-18 जनवरी 1948 के दौरान उनका अंतिम आमरण अनशन चला। पागल देश को होश में लाने की पराकाष्ठा करने के बाद वे प्रभु-शरण हुए— ईश्वर चाहे तो बचाए; देश चाहे तो समझे! भगवान और इंसान को एक साथ चुनौती देने का उनका यह दुःसाहस किसी को रास नहीं आया था—न गृहमंत्री सरदार पटेल को, न पुत्र देवदास को। एक जवाहरलाल थे जो गहरी पीड़ा में डूबते-उतराते, किसी घोषणा-योजना के बिना उनके साथ अघोषित अनशन की राह पर चल पड़े।

20 जनवरी को हत्यारों ने योजनानुसार उन पर बम फेंका, जो निशाना चूक गया। गांधी समझ रहे थे कि उनकी हत्या की कोशिश लगातार चल रही है। वे हत्या की दो विफल कोशिशों के बीच के समय को जी रहे थे। वे उद्विग्न नहीं थे, परमावस्था में थे। 27 जनवरी 1948 को जब प्रख्यात अमरीकी पत्रकार-लेखक विन्सेंट शीन उनसे मिलने पहुंचे, गांधीजी ने उनसे कहाः "हो सकता है कि आज मेरी मौत ही मानवता की सेवा के लिए जरूरी हो!" मतलब वे मौत की आहट सुन रहे थे— 20 जनवरी को उन्होंने मौत को सामने देखा भी! सावरकर-प्रेरित हत्यारों की टोली ने मदनलाल पाहवा को प्रार्थना-सभा में बैठे गांधीजी पर बम फेंकने के लिए तैयार किया था। बम फेंका भी गया, बम फटा भी लेकिन मदनलाल पाहवा का अनुमान गलत निकला, और बम गांधीजी तक पहुंच नहीं सका। गांधीजी को मारने की यह पांचवीं विफलता थी। मदनलाल पाहवा पकड़ा गया। लेकिन गांधीजी ने क्या कहा? "इसमें मेरी बहादुरी नहीं थी! मुझे कहां पता था कि कोई जानलेवा हमला होने को है। बहादुरी तो तब कहलाएगी जब

कोई सामने से गोली मारे और फिर भी मेरे मुख पर मुस्कान हो, मुंह में राम का नाम हो!"

29 जनवरी 1948 को गांधीजी देर से सोने गए। खांसी का बेदम करने वाला दौरा आया। बमुश्किल अपनी सांस पर काबू रखते हुए उन्होंने मनु से कहा, "यदि कोई गोली मार कर मेरी जान ले ले, उसी तरह जिस तरह उस दिन बम फेंका था, और मैं बगैर किसी कराह के भगवान का नाम लेकर मरूं तभी मुझे महात्मा जानना!"

जब मौत, हत्यारे हर कोने से झांक रहे हों तब इतनी धीरता व तटस्थता से जीवन की, समाज की, सबके हित की बात करना वीरता नहीं, महावीरता है। इसलिए हमने यह एक आयोजन किया है कि बम फेंकने के दिन से गोली खाकर गिरने तक के अंतिम 10 दिनों में गांधीजी ने अपनी प्रार्थना-सभा में क्या कहा, उसे हम देखें भी और आपको दिखाएं भी। ये इतिहास के वे पन्ने हैं जो कम ही, बहुत ही कम पलटे गए हैं। इन पन्नों में से आपको एक वह आदमी उभरता दिखाई देगा जिसके पास तीता, विषाक्त, कठोर कुछ है ही नहीं। भारत की नवजात आजादी को मनुष्यता का स्पर्श कैसे मिले, भीड़ कैसे लोकतंत्र के नागरिक में बदलती जाए, शासन कैसे प्रजा और जनता के बीच का फर्क करने की तमीज सीखे इसकी उत्कटता उनके हर प्रवचन के हर शब्द में मिलती है। वे घर के किसी बुजुर्ग की तरह, अपने परिवार में बैठकर बातें करते मिलते हैं; और किसी भी किसी प्रश्न से वे न बचते हैं, न किसी आलोचना से आंख चुराते हैं।

इन दिनों इतिहास के निरक्षरों का बोलबाला है। वे उस इतिहास को उजागर करने में रात-दिन लगे हैं जो न घटा है, न लिखा है। अखबार, टीवी सबको अपनी मुट्ठी में दबोचने का यह काल 1975 की इमर्जेंसी से भी खतरनाक है। मीडिया इस 'तथ्य व सत्य हीन इतिहास' को बंधुआ मजदूरों की तरह प्रचारित कर रहा है। इसका प्रतिकार कैसे करें हम और आप? सच को सच की तरह जान कर, और सच को सच की तरह पाठकों तक पहुंचा कर।

'गांधी-मार्ग' इसे अपना धर्म समझता है, क्योंकि यही गांधी का मार्ग है।

भाइयो और बहनो,

पहली बात तो मैं आपसे यह कह दूं कि जिन लोगों ने दस्तखत किए उन्होंने, मेरी उम्मीद है, सत्यरूपी ईश्वर को साक्षी रखकर दस्तखत किए हैं, तो भी कलकत्ते से ऐसी आवाज आ रही है कि यहां जो काम हुआ है उसमें भी कुछ घोटाला न हो। अगर दिल्ली के निवासी और दिल्ली में जो दुखी आ गए हैं, वे सब साबित कदम रहेंगे चाहे बाहर में कुछ भी हो– हिंदुस्तान के और हिस्से में कुछ भी हो, पाकिस्तान में कुछ भी हो– तो मेरा दृढ़ मत है कि आप हिंदुस्तान को बचा लेंगे और पाकिस्तान को भी बचाने वाले हैं। आखिर दिल्ली आजकल का नहीं, पुराना शहर है। आज दिल्ली में जो काम हो गया है– इतना बड़ा काम, जो सत्यमय और अहिंसामय है– उसका प्रभाव सारे हिंदुस्तान में, सारे पाकिस्तान में और सारी दुनिया में पड़ेगा।

सरदार ने बंबई में क्या कहा, उसे गौर से पढ़ें तो पता चल जाएगा कि सरदार और पंडित नेहरू दूर नहीं हैं, अलग-अलग नहीं हैं। कहने का तरीका अलग हो सकता है, लेकिन करते एक ही चीज हैं। वे हिंदुस्तान या मुसलमान के दुश्मन नहीं हो सकते। जो मुसलमान का दुश्मन है वह हिंदुस्तान का भी दुश्मन है, इसमें मुझे कोई शक नहीं। इसलिए मैं कहूंगा कि हम कम-से-कम इतना तो सीख लें। सारी दुनिया में लोग सीख चुके हैं। हां, अमरीका एक ऐसा मुल्क है, जहां हब्शी लोगों को मार डाला जाता है। वहां काफी ऐसे गोरे लोग हैं जो बुरा नहीं मानते, उनके लिए दिल में शर्म नहीं है, लेकिन दुनिया के दूसरे लोग इसे पसंद नहीं करते। उसको हम वहशियाना मानते हैं। हमारे ही अखबारों ने लिखा है कि वे लोग कितने वहशियाना काम करते हैं। अमरीका के लोग इतने सुधारक हैं, तो भी ऐसा करते हैं। हम ऊंचे हैं, हम ऐसा कर नहीं सकते। वह तो है, लेकिन आज क्या होता है? तो मैं कहूंगा कि आप सब बता दें कि गैर-इंसाफ, बाहर हो या यहां, उसका बदला हम नहीं लेंगे, हुकूमत पर छोड़ देंगे। कम-से-कम इतना करें, तब लोग आराम से आ-जा सकते हैं।

मैंने कहा कि मुमकिन है, मैं यहां से पाकिस्तान जाऊं, लेकिन पाकिस्तान को तब जाऊंगा जब हुकूमत बुलाएगी और कहेगी कि तू तो भला आदमी है, ख्वाब में भी मुसलमानों का बुरा नहीं कर सकता, हिंदुओं का भी बुरा नहीं करता, सिखों का भी बुरा नहीं करता, हम हर हालत में तेरी हाजिरी पाकिस्तान में चाहते हैं। या तो एक-एक हुकूमत कहे– तीन हुकूमतें हैं, बलूचिस्तान को छोड़ दो– या पाकिस्तान की मरकजी हुकूमत है वह कहे तो जा सकता हूं। तब आप समझें कि मैं चला गया। हां, डॉक्टर कहते हैं कि

फाके से जिस्म को इतना नुकसान पहुंचा है कि पंद्रह दिन कहीं नहीं जा सकता– सूखी चीज भी नहीं खा सकता– तुमको तो पानी ही पीना है। पीछे पानी में दूध आ जाता है, फल का रस आ जाता है। दूध से तो आदमी जिंदगी भर रह सकता है।

जो मुसलमान का दुश्मन है वह हिंदुस्तान का भी दुश्मन है, इसमें मुझे कोई शक नहीं। इसलिए मैं कहूंगा कि हम कम-से-कम इतना तो सीख लें। सारी दुनिया में लोग सीख चुके हैं।

दूसरी बात यह है। यहां जितने दुखी लोग हैं, उनके लिए तो पंडितजी– उनको मैं बहुत पहचानता हूं– ऐसे हैं कि दूसरों को सुलाकर सोने वाले हैं। मानो एक ही बिछौना है, जो सूखा है, बाकी गीला है तो वह सूखे में दुखी को सुलाएंगे, खुद चाहे घूमते रहें। मैं यह पढ़कर बहुत खुश हुआ। वे कहते हैं कि उनको घर में जगह नहीं है, दूसरे आदमी भी चले आते हैं, इसलिए जगह नहीं रहती है। वह तो मुख्य प्रधान हैं। तो मिलने वाले जाते हैं, दोस्त हैं, अंग्रेज भी जाते हैं तो क्या वहां से उनको निकाल दें? तो भी कहते हैं कि मेरी तरफ से एक कमरा या दो कमरा, जितना निकल सकता है, निकालूंगा और दुखी लोगों को रखूंगा। फिर दूसरे मुख्य प्रधान भी करें, फिर फौज के अफसर हैं, वे भी ऐसा करें। इस तरह से सब अपने धर्म का पालन करें तो कोई दुखी नहीं रहेगा। ऐसा जो जवाहर ने किया, उसे देखा तो मैं उनको और आपको धन्यवाद देता हूं कि हमारे यहां एक रत्न है। पीछे कहते हैं कि दूसरे धनिक लोग, जैसे बिड़ला या दूसरे हैं, उनको भी यही करना है। जब प्रधान ऐसा करता है तो और भी क्यों न ऐसा करें? बड़ी तेजी से दुखी लोगों के दुख को दूर करने की कोशिश हो रही है। इससे हम सीखें कि हम मुसलमानों से दुश्मनी नहीं करेंगे।

एक खत आया है। मेरा फाका चलता था तब 15 जनवरी को आया था। लोगों में बदमाश भी पड़े हैं। उन्होंने सोचा कि व्यापार करो। उन्होंने बड़े-बड़े नोट निकाल दिए और, गरीबों को बेचने लगे। सस्ते मिलते हैं, इसलिए गरीब बेचारे ले लेते हैं। लेकिन इन नोटों की तो कोई कीमत नहीं, आखिर मामूली कागज के ही होते हैं। ऐसे नोट निकालने वालों से मैं हाथ जोड़कर कहूंगा कि ऐसा मत करो। क्या सच्चा मार्ग नहीं मिलता है, जिससे अपना काम चला सकें? मैं गरीबों को भी, जो भोले हैं, कहूंगा कि कहां तक ऐसे भोले रहोगे। करोड़ों भोले रहेंगे तो काम नहीं चलेगा।

मुझको एक तार लाहौर से आया है। वे भाई कश्मीर स्वातंत्र्य लीग के

अध्यक्ष हैं। वे लिखते हैं कि आप जो कर रहे हैं वह बहुत बुलंद काम है, लेकिन उसमें कामयाबी नहीं मिल सकती, जब तक कश्मीर का जो मसला है उसका फैसला नहीं हो जाता। इसके लिए तुमको ऐसा करना चाहिए कि भारत सरकार ने वहां जो फौज भेजी है उसको हटा लें; क्योंकि उस फौज ने कश्मीर में हमला किया है। कश्मीर जिसका है उसको दे दो तब फैसला होगा। इससे मुझको दुख होता है। क्या कश्मीर का फैसला नहीं होता है तो आज ऐसा ही रहेगा– मुसलमान हिंदू-सिख के दुश्मन रहेंगे और हिंदू-सिख मुसलमान के दुश्मन रहेंगे, सिर्फ कश्मीर के लिए? पीछे लिखा क्या है उसे समझना चाहिए। मैं तो ऐसा नहीं मानता हूं कि हमारी हुकूमत ने जो फौज भेजी है, वह हमला करने के लिए है। कश्मीर की संकटकालीन सरकार के प्रधान शेख अब्दुल्ला ने लिखा और महाराज ने लिखा कि हमको इमदाद भेजो, नहीं तो कश्मीर गया– वह तो उनकी निगाह से है, लिखने वाले की निगाह से नहीं सही। तो मैं उस भाई को और ऐसे जितने हैं उन सबको कहूंगा कि वे ऐसा न करें। हां, यह ठीक है कि जिसका है उसको दे दो। तो जितने बाहर से आए हैं– अफरीदी हों या कोई भी हों– हट जाएं। पुंछ के लोग बागी बने हैं तो मुझको शिकायत नहीं है, वे रहें तो भी बागी बनकर समूचे कश्मीर को ले लें, यह अच्छा नहीं है। वहां से बाहर के सब लोग निकल जाएं, बाहर से कोई गोलमाल न करें, शिकायत न करें और बाहर से भीतर वालों को मदद न करें तो मैं समझ सकता हूं; लेकिन कहें कि हम रहेंगे और उनको निकाल दो तो बात बनती नहीं है। पीछे यह कहना कि कश्मीर महाराजा का है, क्योंकि महाराजा तो वहां है। आज हमारी निगाह में हुकूमत की निगाह में महाराजा को निकाल नहीं सकते। हां, ऐसा समझें कि महाराजा बदमाश है, रैयत के लिए कुछ करता नहीं है तो मेरा ख्याल है कि हुकूमत का हक है कि उसे निकाल दें, लेकिन अभी ऐसी बात तो है नहीं। वहां जो मुसलमान हैं वे कहें कि हमें महाराजा नहीं चाहिए, हम सीधा-सीधा पाकिस्तान या हिंदुस्तान में जाना चाहते हैं तो इसमें कोई शिकायत नहीं हो सकती। मैं तो फाका करके उठा हूं। मैं किसी का दुश्मन नहीं हूं तो मुसलमान का दुश्मन कैसे हो सकता हूं! मेरे पास आएं और

क्या कश्मीर का फैसला नहीं होता है तो आज ऐसा ही रहेगा– मुसलमान हिंदू-सिख के दुश्मन रहेंगे और हिंदू-सिख मुसलमान के दुश्मन रहेंगे, सिर्फ कश्मीर के लिए? पीछे लिखा क्या है उसे समझना चाहिए। मैं तो ऐसा नहीं मानता हूं कि हमारी हुकूमत ने जो फौज भेजी है, वह हमला करने के लिए है।

समझाएं कि मेरी क्या गलती है। समझा सको तो मैं मान जाऊंगा।

पीछे एक भाई ग्वालियर से लिखते हैं– तार रतलाम से आया है, मुसलमान भाई का है। सही क्या है, मैं नहीं जानता हूं। तो वे लिखते हैं कि हमारे वहां ग्वालियर रियासत में कोई देहात है– हम वहां मजबूर हो गए तब हिंदुओं ने हमें ले तो लिया; लेकिन मारना शुरू कर दिया– एक दो मारे गए, अनाज वगैरह लूट लिया। मकानों को जला दिया। पंद्रह-सोलह जनवरी को लिखा। उन दिनों मेरा फाका चलता था। फाका से उसको क्या मतलब हो सकता है? अगर यह सही है तो मैं ग्वालियर के हिंदुओं से कहूंगा कि दिल्ली में जो बन गया है। उसको आप लोग बिगाड़ने वाले हैं। वे कहते हैं कि जो हुकूमत चलाने वाले हैं वे भी इमदाद नहीं देते हैं। ऐसा कैसे हो सकता है? हिंदुस्तान के एक कोने में भी ऐसा हो तो मैं कहूंगा कि हुकूमत को शर्मिंदा होना है और हमको भी शर्मिंदा होना है। मेरी उम्मीद है कि ऐसा हुआ हो तो आखिर में उसको ठीक कर दिया जाएगा।

मुझसे कहा गया कि आप मरने वाले थे, पर ईश्वर की कृपा से बच गए। अगर सामने बम फटे और मैं न डरूं, तो आप देखेंगे और कहेंगे कि वह बम से मर गया तो भी हंसता ही रहा। आज तो मैं तारीफ के काबिल नहीं हूं।

मैंने सुना है, अखबारों में पढ़ा है कि काठियावाड़ के जितने राजा हैं– काफी हैं, दो सौ से ज्यादा हैं– उन सबने मिलकर इकरार कर लिया है कि हम सब एक रियासत बनाएंगे और असेंबली बना लेंगे, प्रजा का भी काम करेंगे और अपना भी काम करेंगे। अगर अखबारों में जो बात आई है वह सही है तो बड़ी चीज है। इसके लिए काठियावाड़ के सब राजाओं को और वहां के लोगों को मैं धन्यवाद देता हूं। भावनगर में सब सत्ता प्रजा के हाथ सौंप दी और राजा प्रजा का सेवक बन गया। इस बड़े काम के लिए मैं उनको धन्यवाद देना चाहता हूं।

21 जनवरी, 1948

पहले तो मैं माफी मांग लूं कि मैं 10 मिनट देर से आया हूं। बीमार हूं, इसलिए समय पर नहीं आ सका।

कल के बम फूटने की बात कर लूं। लोग मेरी तारीफ करते हैं और तार भी भेजते हैं। पर मैंने कोई बहादुरी नहीं दिखाई। मैंने तो यही समझा था

कि फौज वाले कहीं प्रैक्टिस करते हैं। बाद में सुना कि बम था। मुझसे कहा गया कि आप मरने वाले थे, पर ईश्वर की कृपा से बच गए। अगर सामने बम फटे और मैं न डरूं, तो आप देखेंगे और कहेंगे कि वह बम से मर गया तो भी हंसता ही रहा। आज तो मैं तारीफ के काबिल नहीं हूं। जिस भाई ने यह काम किया, उससे आपको या किसी को नफरत नहीं करनी चाहिए। उसने तो यह मान लिया कि मैं हिंदू धर्म का दुश्मन हूं। क्या गीता के चौथे अध्याय में यह नहीं कहा गया है कि जहां कहीं दुष्ट धर्म को नुकसान पहुंचाते हैं वहां उन्हें मारने के लिए भगवान किसी को भेज देते हैं, उसने बहादुरी से जवाब दिया। हम सब ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह उसे सन्मति दे। जिसे हम दुष्ट मानते हैं और वह दुष्ट है, तो उसकी खबर ईश्वर लेगा।

वह नौजवान शायद किसी मस्जिद में बैठ गया था। जगह नहीं थी, तो वह हुकूमत को दोषी ठहराए, पर पुलिस का या किसी का कहना न माने, यह तो ठीक नहीं।

इस तरह हिंदू धर्म नहीं बच सकता। मैंने बचपन से हिंदू धर्म को पढ़ा और सीखा है। मैं छोटा-सा था और डरता था, तो मेरी दाई कहती थी कि डरता क्यों है, राम-नाम ले। फिर मुझे ईसाई, मुसलमान, पारसी सब मिले, मगर मैं जैसा छोटी उमर में था, वैसा ही आज भी हूं। अगर मुझे हिंदू धर्म का रक्षक बनना है तो ईश्वर मुझे बचाएगा।

कुछ सिखों ने आकर मुझसे कहा कि हम नहीं मानते कि इस काम में कोई सिख शामिल था। सिख होता तो भी क्या? हिंदू या मुसलमान होता, तो भी क्या? ईश्वर उसका भला करे। मैंने इंस्पेक्टर जनरल से कहा है कि उस आदमी को सताया न जाए। उसका मन जीतने की कोशिश की जाए। उसे छोड़ने को मैं नहीं कह सकता। अगर वह इस बात को समझ ले कि उसने हिंदू धर्म, हिंदुस्तान, मुसलमानों और सारे जगत के सामने अपराध किया है तो उस पर गुस्सा न करें, रहम करें। अगर सबके मन में यही है कि बूढ़े का फाका निकम्मा था, पर इसे मरने कैसे दें, कौन उसका इल्जाम ले, तो आप गुनहगार हैं, न कि बम फेंकने वाला नौजवान। अगर ऐसा नहीं है तो उस आदमी का दिल अपने आप बदलेगा ही; क्योंकि इस जगत में पाप कभी

इस जगत में पाप कभी अपने आप रह नहीं सकता। वह किसी के सहारे ही टिक सकता है। सिर्फ भगवान और भगवान के भक्त ही अपने सहारे रह सकते हैं। इसी में से हमारा असहयोग निकला। अहिंसात्मक असहयोग यहां भी ठीक है।

अपने आप रह नहीं सकता। वह किसी के सहारे ही टिक सकता है। सिर्फ भगवान और भगवान के भक्त ही अपने सहारे रह सकते हैं। इसी में से हमारा असहयोग निकला। अहिंसात्मक असहयोग यहां भी ठीक है।

लेकिन मैं दीन मिस्कीन आदमी हूं, मेरे मरने से क्या लड़ना, मारना? पर भगवान मिस्कीन को भी निमित्त बनाकर न मालूम क्या-क्या कर सकता है! कहते हैं, अब यहां के हिंदू-मुसलमान नहीं लड़ेंगे। मुसलमान औरतें भी दिल्ली में घर से बाहर आने लगी हैं। मुझे खुशी है।

आप भी भगवान का नाम लेते हैं। हमला हो, कोई पुलिस भी मदद पर न आवे, गोलियां भी चलें और तब भी मैं स्थिर रहूं और राम-नाम लेता और आपसे लिवाता रहूं, ऐसी शक्ति ईश्वर मुझे दे, तब मैं धन्यवाद के लायक हूं।

कल एक अनपढ़ बहन ने इतनी हिम्मत दिखाई कि बम फेंकने वाले को पकड़वा दिया। यह मुझे अच्छा लगा। मैं मानता हूं कि मिस्कीन हो, अनपढ़ हो या पढ़ा-लिखा हो, मन है तो सब कुछ है। मन चंगा तो भीतर में गंगा। मुझ पर तो सबने प्रेम ही बरसाया है।

बहावलपुर वालों ने लिखा है कि उन्हें जल्दी निकालो नहीं तो सब मरने वाले हैं। मैं कहता हूं कि घबराएं नहीं। वहां के नवाब साहब ने आज भी मुझे तार दिया है कि वे सब कोशिश करेंगे। मैं उस चीज को भूल नहीं गया हूं। बंबई के सिंधी, सिख भाइयों की तरफ से एक तार आया है। वे कहते हैं कि सिंध में 15,000 सिख हैं। कुछ को तो मार डाला है। ये 15,000 इधर-उधर पड़े हैं। उनकी जान और उनका ईमान खतरे में है। उन्हें वहां से निकालने की तजबीज कीजिए। हवाई जहाज से ही कोशिश कीजिए। मैं यहां जो कहता हूं, वह बात उन तक जल्दी से पहुंचेगी। तार देर से पहुंचते हैं। मुझे यह बर्दाश्त नहीं होगा कि 15,000 सिख काटे जाएं या उनके ईमान-इज्जत पर हमला हो। तो मैं एक इंसान जो कर सकता है, वह करूंगा। दूसरे, पंडितजी तो सबका ध्यान रखते ही हैं। सिंध और पाकिस्तान की हुकूमतों को मैं कहूंगा कि वे सिखों को इत्मीनान दिला दें कि जब तक वे वहां हैं उनको किसी तरह का खतरा नहीं। अगर वे यह नहीं कर सकते, तो सबको एक जगह रखें या हिफाजत के साथ भेज दें। सिख बहादुर हैं। इनके ईमान पर हमला कौन करने वाला है। तो सिख भाई इत्मीनान रखें। मैंने कुछ पारसी भाई वहां देखने को भेजे हैं। एक भाई लिखते हैं कि जब आप 1942 में जेल में थे तब हमने हिंसा का भी काम कर लिया था। उपवास में कहीं अगर आपका अंत हो गया तो देश में ऐसी हिंसा फूटेगी कि आपका ईश्वर भी रो

उठेगा। इसलिए आपका उपवास हिंसक होगा। आप उपवास छोड़ दीजिए। यह बात प्रेम से लिखी है और अज्ञान से भी। यह सही है कि मेरे जेल जाने के बाद हिंसा हुई। उसी का यह नतीजा है। उस वक्त सारा हिंद अहिंसक रहता तो उसका आज का हाल कभी न होता। मेरे मरने से सब आपस-आपस में लड़ेंगे, इस बारे में भी मैंने सोच लिया है। ईश्वर को बचाना होगा तो बचावेगा। अहिंसा से भरा आदमी मरता है तो उसका नतीजा अच्छा ही होगा। पर कृष्ण भगवान के मरने के बाद यादव ज्यादा भले या पवित्र नहीं हुए। सब कट-कट कर मर गए। तो मैं उस पर रोने वाला नहीं। भगवान ने इरादा कर लिया है कि उन्हें मरने दो, तो ऐसा होगा। लेकिन मैं दीन, मिस्कीन आदमी हूं, मेरे मरने से क्या लड़ना, मारना? पर भगवान मिस्कीन को भी निमित्त बनाकर न मालूम क्या-क्या कर सकता है! कहते हैं, अब यहां के हिंदू-मुसलमान नहीं लड़ेंगे। मुसलमान औरतें भी दिल्ली में घर से बाहर आने लगी हैं। मुझे खुशी है। मैं सबसे कहता हूं कि अपने-अपने दिल को भगवान का मंदिर बना लो।

22 जनवरी, 1948

आप देखते हैं कि आहिस्ता-आहिस्ता ईश्वर की तरफ से मुझ में ताकत आ रही है। उम्मीद है कि जल्दी पहले-जैसा हो जाऊंगा। पर यह ईश्वर के हाथों में है।

एक भाई लिखते हैं कि जवाहरलालजी, दूसरे वजीर और फौजी अफसर वगैरह सब अपने-अपने घरों में से कुछ जगह शरणार्थियों के लिए निकालें तो भी उनमें कितने लोग बस सकेंगे? कहने वाले ज्यादा हैं, करने वाले कम।

अमरीका का मुकाबला रहने दो। खाने में, पीने में और पार्टियां देने में वे जो दावा करते थे कि हमारी हुकूमत आवेगी तो हमारा भी रंग-ढंग बदल जाएगा, वह उन्हें झुठला देना चाहिए। हमारे त्यागी कांग्रेस वाले भी ऐसी गलती करें तो यह सोचने की बात है।

ठीक है, कुछ हजार ही उनमें रह सकेंगे। काम इतना बड़ा नहीं, पर करने वाले एक मिसाल कायम करेंगे। इंग्लैंड के राजा कुछ भी त्याग करें, एक प्याली शराब भी छोड़ें, तो भी उनकी कद्र होती है। सब सभ्य देशों में ऐसा होता है। सब दुखी लोगों पर अच्छा असर होता है। अगर दूसरे लोग भी उनकी तरह करेंगे, तो उनके लिए मकान वगैरह बनाने वालें को तसल्ली मिलेगी। अगर नतीजा यह होगा कि दूसरी जगह से भी

लोग दिल्ली आने लगें, तो काम बिगड़ेगा। लोगों ने समझा कि दिल्ली में हमारी पूछताछ ज्यादा होगी।

दूसरी कठिनाई यह है– लोग कहते हैं कि पहले कांग्रेस को एक लाख रुपये जमा करने में भी मुसीबत होती थी। लोग देते तो थे, पर हम भिखारी थे। आज करोड़ों रुपये हमारे हाथ में आ गए हैं। करोड़ों लेने की ताकत भले आई, पर खर्च तो वही अंग्रेजी जमाने वाला है। जितना रुपया उड़ाना है, उड़ावें। शान से न रहें, तब उसका असर देश से बाहर भी पड़ेगा। उन्हें समझना चाहिए कि पैसा शौक के लिए खर्चना चाहिए या देश के काम के लिए? यदि यह बात ठीक है कि हम इंग्लैंड के साथ मुकाबला करें तो कर सकते हैं, पर वहां एक आदमी की जो आमदनी है, उससे यहां बहुत कम है। ऐसा गरीब मुल्क दूसरे मुल्कों के साथ पैसे का मुकाबला करे तो वह मर जावेगा। दूसरे देशों में हमारे प्रतिनिधि भी यह बात समझें। अमरीका का मुकाबला रहने दो। खाने में, पीने में और पार्टियां देने में वे जो दावा करते थे कि हमारी हुकूमत आवेगी तो हमारा भी रंग-ढंग बदल जाएगा, वह उन्हें झुठला देना चाहिए। हमारे त्यागी कांग्रेस वाले भी ऐसी गलती करें तो यह सोचने की बात है।

महाराजा को लोगों का सेवक बनना है। इस आत्म-शुद्धि के यज्ञ में राजा-प्रजा सबको अच्छी तरह भाग लेना है। तब तो हम सारी दुनिया के सामने खड़े रह सकते हैं। अगर हमें दुनिया की चाल को ठीक रखना है और उसके रक्षक बनना है तो इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

फिर लोग कहते हैं कि ये लोग इतने पैसे लेते हैं तब हम हुकूमत की नौकरी करें, तो हमें भी ज्यादा पैसे मिलने चाहिए। सरदार पटेल को अगर 15,00 रुपये मिलें, तो हमें 500 तो मिलने ही चाहिए। यह हिंदुस्तान में रहने का तरीका नहीं है। जब हर एक आत्म-शुद्धि का प्रयत्न करता हो, तब यह सब सोचना कैसा? पैसे से किसी की कीमत नहीं होती।

ग्वालियर रियासत के एक गांव में मुसलमानों पर जो गुजरी है उसे बताने वाले तार की बात मैंने की थी। उस बारे में मुझे वहां के एक कार्यकर्ता ने सुनाया कि आपको मैं एक खुशखबरी देने आया हूं। ग्वालियर के महाराज ने सब सत्ता प्रजा को दे दी है। थोड़ी जो रखी है उसमें भी हमारा बहुमत होगा। उन्होंने मुझसे कहा कि लोगों को जो सत्ता मिलनी चाहिए वह मिली, यह सुनकर आप खुश होंगे। हां, मगर प्रजा-मंडल वालों में भेदभाव आ जाए और वे मुसलमानों को निकालें, तो मुझे क्या खुशी? अगर आप कहें कि

भेदभाव नहीं होगा, क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या पारसी, क्या ईसाई, किसी के साथ बैर नहीं करेंगे, तब तो वह मेरा ही काम हुआ। उसमें मेरा धन्यवाद और आशीर्वाद मिलेगा ही। महाराजा को लोगों का सेवक बनना है। इस आत्म-शुद्धि के यज्ञ में राजा-प्रजा सबको अच्छी तरह भाग लेना है। तब तो हम सारी दुनिया के सामने खड़े रह सकते हैं। अगर हमें दुनिया की चाल को ठीक रखना है और उसके रक्षक बनना है तो इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

23 जनवरी, 1948

आज मेरे पास काफी चीजें पड़ी हैं। जितना हो सकेगा उतना कहूंगा।

आज सुभाष बाबू की जन्म-तिथि है। मैंने कह दिया है कि मैं तो किसी की जन्म-तिथि या मृत्यु-तिथि याद नहीं रखता। वह आदत मेरी नहीं है। सुभाष बाबू की तिथि की मुझे याद दिलाई गई। उससे मैं राजी हुआ। उसका भी एक खास कारण है। वे हिंसा के पुजारी थे। मैं अहिंसा का पुजारी हूं। पर इसमें क्या? मेरे पास गुण की ही कीमत है। तुलसीदास जी ने कहा है नः

जड़-चेतन गुन-दोषमय विश्व कीन्ह करतार।

संत-हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार।।

हंस जैसे पानी को छोड़कर दूध ले लेता है, वैसे ही हमें भी करना चाहिए। मनुष्य मात्र में गुण और दोष दोनों भरे पड़े हैं। हमें गुणों को ग्रहण करना चाहिए। दोषों को भूल जाना चाहिए। सुभाष बाबू बड़े देश-प्रेमी थे। उन्होंने देश के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी थी और वह करके भी बता दिया। वह सेनापति बने। उनकी फौज में हिंदू, मुसलमान, पारसी, सिख, सब थे। सब बंगाली ही थे, ऐसा भी नहीं था। उनमें न प्रांतीयता थी, न रंगभेद, न जातिभेद। वे सेनापति थे, इसलिए उन्हें ज्यादा सहूलियत लेनी या देनी चाहिए, ऐसा भी नहीं था।

एक बार एक सज्जन, जो बड़े वकील थे, उन्होंने मुझसे पूछा कि हिंदू-धर्म की व्याख्या क्या है? मैंने कहा, मैं हिंदू धर्म की व्याख्या नहीं जानता। मैं आप-जैसा वकील कहां हूं? मेरे हिंदू धर्म की व्याख्या मैं दे सकता हूं। वह यह है कि जो सब धर्मों को समान माने वही हिंदू धर्म है।

एक बार एक सज्जन, जो बड़े वकील थे, उन्होंने मुझसे पूछा कि हिंदू-धर्म

की व्याख्या क्या है? मैंने कहा, मैं हिंदू धर्म की व्याख्या नहीं जानता। मैं आप-जैसा वकील कहां हूं? मेरे हिंदू धर्म की व्याख्या मैं दे सकता हूं। वह यह है कि जो सब धर्मों को समान माने वही हिंदू धर्म है। सुभाष बाबू ने सबका मन हरण करके अपना काम किया। इस चीज को हम याद रखें।

दूसरी चीज– ग्वालियर से खबर आई है कि रतलाम से आपको एक गांव के झगड़े के बारे में खबर मिली थी, वह सर्वथा ठीक नहीं है। वहां कुछ दंगा हुआ तो सही; लेकिन आपस-आपस में, उसमें हिंदू-मुसलमान की कोई बात न थी। मुझे इससे बड़ी खुशी होती है। उस पर से मैं मुसलमान भाइयों को जाग्रत करना चाहता हूं। मैं तो, जो चीज मेरे सामने आती है, उसे जनता के सामने रख देता हूं। अगर ऐसी बनी-बनाई बात कहते रहेंगे, तो सबके दिल में गलतफहमी हो जाएगी। कोई भी चीज बढ़ाकर न बतावें। अपनी गलती बढ़ाकर बता दें, दूसरों की कम करके तब यह माना जाएगा कि हम आत्मशुद्धि के नियम का पालन करते हैं।

मैसूर से तार आया है कि आपने जो व्रत लिया उसका मैसूर की जनता पर असर नहीं पड़ा। वहां झगड़ा हो गया है। मैं मैसूर के हिंदू-मुसलमानों को जानता हूं। जिनके हाथ में हुकूमत है उनको भी जानता हूं। मैंने मैसूर सरकार को लिखा है कि वे, जो कुछ हुआ है, उसे साफ-साफ दुनिया को बता दें।

जूनागढ़ से मुसलमान भाइयों का तार आया है। वे लिखते हैं कि जबसे कमिश्नर और सरदार ने हुकूमत ले ली है तब से यहां हमें न्याय ही मिल रहा है। अब कोई भी हममें फूट नहीं डाल सकेगा। यह मुझे बड़ा अच्छा लगता है।

मेरठ से एक तार आया है। उसमें लिखा है कि आपके उपवास का नतीजा ठीक आ रहा है। यहां पर जो नेशनलिस्ट मुसलमान हैं, उनसे हमें कोई नफरत नहीं है। पर लीगी मुसलमान सीधे हो गए हैं या हो जाएंगे, ऐसा मानोगे तो आपको पछताना पड़ेगा। आपकी अहिंसा अच्छी है, मगर राजनीति में नहीं चल सकती। फिर भी हम आपको कहना चाहते हैं कि आपकी जो हुकूमत है वह अच्छी है, इसमें किसी तरह की तब्दीली नहीं होनी चाहिए।

मैं तो नहीं समझता कि तब्दीली का सवाल उठता कहां है!

मगर तब्दीली की गुंजाइश हो तो जिनके हाथ में हुकूमत है, उन्हें निकालना आपके हाथों में है। मैं तो इतना जानता हूं कि उनके बिना आज आप काम नहीं चला सकेंगे।

आज यह कहना कि राजनीति में अहिंसा चल नहीं सकती, निकम्मी बात है। आज जो काम हम कर रहे हैं, वह हिंसा का है। मगर वह चल नहीं सकता। मेरठ के मुसलमानों ने आजादी की लड़ाई में काफी हिस्सा लिया है।

आजकल की राजनीति अविश्वास से चल ही नहीं सकती। इसलिए हमें मुसलमानों पर विश्वास रखना ही होगा। यदि हमने तय कर लिया है कि भाई-भाई बनकर रहना है तो फिर हम किसी मुसलमान पर खामखाह अविश्वास न करेंगे; फिर भले वह लीगी हो। मुसलमान कहें कि हिंदू-सिख बदमाश हैं, तो यह निकम्मी बात है। ऐसे ही हर एक लीगी के लिए यह मान लेना भी बुरा है। अगर कोई लीगी या दूसरा कोई भी बुरी बात करता है, तो आप उसकी खबर सरकार को दें। हमारा परम धर्म मैंने सबको बता दिया है कि न्याय हुकूमत के हाथों में रहने दें, अपने हाथ में न ले लें। वह वहशियाना काम होगा। मेरे पास बहुत से तार आ रहे हैं। सबको जवाब नहीं दे सकता, इसलिए सभा के मार्फत मैं आप सबका अहसान मानता हूं। आपकी दुआ सफल हो।

24 जनवरी, 1948

मैंने आपसे प्रार्थना की है कि सब लोगों को प्रार्थना-सभा में शांत रहना चाहिए। आज तो मैंने प्रार्थना के आरंभ में भी कहा था कि सब शांत हो जाएं। तब तो आप शांत हो गए, लेकिन बाद में जब प्रार्थना चलती थी तब कुछ बहनें आपस में बातें भी करती थीं और बच्चे चीखते रहते थे। वह कोई अच्छा नहीं लगता था। मैं बार-बार यही कहता हूं सबको कि जब बच्चे चीखते हों या रोते हों, तो उनको बाहर ले जाना चाहिए। उन्हें भीतर लेकर बैठने की हिम्मत नहीं होनी चाहिए, अगर वे सभ्यता सीखना चाहती हैं तो।

आज एक तार मेरे पास है। इसकी बात तो मैं कल ही करना चाहता था, लेकिन नहीं कर सका। बहुत लंबा तार है; लेकिन उसमें इतना लिखा है कि दोनों हुकूमतों में यह समझौता तो हो गया है कि जो कैदी एक हुकूमत में हो गए थे, उनको दूसरी हुकूमत में भेज देना। जैसाकि अगर पश्चिमी पंजाब में या कहो पाकिस्तान के पंजाब में, जो आदमी कैद में हैं वे तो हिंदू और सिख ही हो सकते हैं, कोई अन्य और तरह से हों, वह दूसरी बात है। इसी तरह से जो पूर्वी पंजाब में हैं, वे मुसलमान कैदी हैं। उनमें वे लड़कियां भी हैं जिन्हें लोग भगा ले गए थे। तार में जो कहते हैं कि ऐसा समझौता हो तो गया, लेकिन थोड़े अरसे तक चला। अभी वह टूट गया है और कहा यह जाता है कि जो टूटा उसका कारण यह है कि पश्चिमी पंजाब की जो हुकूमत है उसने कैदियों को रख लिया और कहा कि यह तभी हो सकता है जब कि पूर्वी पंजाब में जितनी रियासतें हैं, या राजा हैं और जहां तक उनका कारोबार चलता है, वहां भी जो कैदी हैं, वे वापस आने चाहिए और वहां जो

लड़कियां हैं उनको भी वापस करना चाहिए।

मुझे तो इसमें कोई दिक्कत नहीं हो सकती है। ऐसे ही पश्चिमी पंजाब की जो रियासतें हैं, वहां होना चाहिए। वहां कम रियासतें हैं और यहां ज्यादा हैं, उससे क्या? कहीं भी हो, इस बारे में समझौता हो जाना चाहिए। इसमें दिक्कत आती है, यह तो सही है। पूर्वी पंजाब से जब यह समझौता कर लिया था तब तो यह नहीं था, ऐसा मैं अखबारों से समझता हूं। नहीं था, तो भी क्या? जितनी लड़कियां उठा ले गए हैं, इधर या उधर, वे सब वापस होनी चाहिए। मेरी निगाह में तो यह नहीं होता कि पश्चिमी पंजाब से दस लड़की आती हैं तो पूर्वी पंजाब से भी दस ही जानी चाहिए, ग्यारहवीं नहीं जा सकती। जितनी लड़कियां पूर्वी पंजाब में पड़ी हैं, औरतें हैं, पुरुष हैं या दूसरे कैदी हैं, उन सबको वापस कर देना चाहिए और यह सब बिना शर्त होना चाहिए। लेकिन आज ऐसा नहीं होता है, क्योंकि वैमनस्य भरा हुआ है। वे ऐसा करने में कठिनाई महसूस करते हैं। लेकिन यह तो होना ही चाहिए कि पूर्वी पंजाब से तो सबको वापस कर दें। उसमें क्या होगा? माना कि कुछ ज्यादा तादाद में पश्चिमी पंजाब में और थोड़ी तादाद में पूर्वी पंजाब में हैं। मैंने कहा है कि मुझको तो इसकी परवाह नहीं है। सब गलती ही है, एक को ले गए वह गलती है और सौ को ले गए वह भी गलती है। ज्यादा नहीं ले सके, उसका कोई दूसरा सबब नहीं है दिल में तो ऐसा नहीं था कि एक ही लड़की को ले जाएं या इतने पुरुष ही कैद रखें। जब सब बिगड़ा तो उसमें पीछे मुकाबला क्या करना था! जो चलता रास्ता है उसमें तो रुकावट नहीं होनी चाहिए। मैं तो कहता हूं कि दूसरी चीजें भी करें, समझौता करके। अगर दोनों हुकूमत दोस्ताना तरीके से करें और यह समझें कि लड़ाई हम आपस-आपस में नहीं करना चाहते है तो फिर रास्ता सीधा और साफ हो जाता है। इसीलिए मैं दोनों हुकूमतों से बड़े अदब से कहूंगा कि जो कुछ भी हो गया है उसे भूल कर अब भी दुरुस्त हो जाएं। दिल को दुरुस्त करना है और अगर दिल दुरुस्त करना ही है, लेकिन झगड़े का सबब तो रह ही जाता है, फिर चाहे मुझको आप तार भेजते रहें कि हमारे झगड़े का कारण कोई रहता ही नहीं। ये सारी चीजें आत्मशुद्धि में आ जाती

मेरी निगाह में तो यह नहीं होता कि पश्चिमी पंजाब से दस लड़की आती हैं तो पूर्वी पंजाब से भी दस ही जानी चहिए, ग्यारहवीं नहीं जा सकती। जितनी लड़कियां पूर्वी पंजाब में पड़ी हैं, औरतें हैं, पुरुष हैं या दूसरे कैदी हैं, उन सबको वापस कर देना चाहिए और यह सब बिना शर्त होना चाहिए।

हैं। आत्मशुद्धि के माने यही है कि हम अपने दिलों को साफ करें।

लेकिन मेरे पास इल्जाम तो यह आ रहा है कि पश्चिमी पंजाब में जो औरतों को उठा ले गए हैं उनको वे उतनी तादाद में वापस नहीं करते। ऐसी शिकायत पूर्वी पंजाब के बारे में भी करते हैं। मैंने तहकीकात तो नहीं की है कि कौन झूठा है और कौन नहीं। मैं तो जानता नहीं हूं, लेकिन पश्चिमी पंजाब के बारे में अगर यह शिकायत सही है तो शर्म की बात है, पूर्वी पंजाब के बारे में भी ऐसा ही है। लेकिन पश्चिमी पंजाब के बारे में तो यह शिकायत भी है कि वे कहते हैं एक चीज और करते हैं दूसरी। मैं इस बारे में इतना ही कह सकता हूं कि यह सब दुरुस्त होना चाहिए। नहीं होता है तो बड़े शर्म की बात है। और पीछे मैं तो यही कहूं कि मैंने जो फाका किया उसके अक्षरों पर तो दिल्ली में अमल हो भी गया, लेकिन उसमें जो भेद या रहस्य है, उसका पालन नहीं हुआ।

25 जनवरी, 1948

अभी हमारे में दिल का समझौता हो गया है, ऐसा लोग कहते हैं। मैं मुसलमानों से पूछता हूं और हिंदुओं से भी। सब यही कहते हैं कि हम सब समझ गए हैं कि अगर आपस-आपस में लड़ते रहेंगे तो काम हो नहीं सकेगा। इसलिए आप सब बेफिक्र रहें। मैं यह पूछना तो नहीं चाहता हूं कि इस सभा में कितने मुसलमान हैं। मगर मैं सबको भाई-भाई बनाने को कहूंगा। किसी भी मुसलमान को अपना दोस्त बना लें या यह मानो कि जो मुसलमान हमारे सामने आता है वह हमारा दोस्त है और उससे कहो कि चलो, वहां आराम से बैठो। यहां किसी से नफरत तो है ही नहीं। दो दिन से तो यहां काफी आदमी आ रहे हैं। अगर सब अपने साथ एक-एक मुसलमान लाते हैं तो बहुत बड़ा काम हो जाता है। इससे हम यही बता सकते हैं कि हम भाई-भाई हैं।

महरौली में जो दरगाह है, वहां कल से मुसलमानों का उर्स का मेला शुरू होगा। वैसे तो वह हर वर्ष होता है, लेकिन इस वर्ष तो हमने उसको ढहा दिया था या बिगाड़ दिया था। जो पत्थर की चित्रकारी का काम था वह भी ढहा दिया था। अब कुछ ठीक कर लिया है, इसलिए उर्स जैसा पहले मनता था, ऐसा ही अब मनेगा। वहां कितने मुसलमान आते हैं इसका मुझको कुछ पता नहीं है। लेकिन इतना तो मुझे मालूम है कि वहां दरगाह में मुसलमान भी काफी जाते थे और हिंदू भी। मेरी तो उम्मीद है सब हिंदू इस बार भी शांति से और पक्की भावना से जाएं तो बड़ा अच्छा है। मुझको पता तो लग जाएगा कि कितने हिंदू गए थे और कितने नहीं। लेकिन वे जो

मुसलमान वहां जाते हैं उनका मजाक न करें और किसी तरह की निंदा न करें। पुलिस के लोग वहां होंगे तो सही, लेकिन कम-से-कम रहने चाहिए। आप सब पुलिस बन जाएं और सब काम ऐसी खूबी से हो कि वह चीज सारी दुनिया में चली जाए। इतना तो हो गया कि आप बड़े मशहूर हो गए हैं। अखबारों में भी आता है और मेरे पास तो तार और खत दुनिया के हर हिस्से से आ रहे हैं। चीन से तथा एशिया के सब हिस्सों से आ रहे हैं और अमरीका तथा यूरोप से भी। दुनिया का कोई भी देश बाकी नहीं बचा है। और सब यही कहते हैं कि यह तो बहुत बुलंद काम हो गया है। हम तो ऐसा मानते थे कि अंग्रेज तो वहां से आ गए, अब ये तो जाहिल आदमी हैं और जानते नहीं हैं कि अपना राज कैसे चलाना चाहिए और आपस-आपस में लड़ते-भिड़ते थे। 15 अगस्त को यह सारी चीज तो हो गई और हम तारीफ भी कर रहे थे कि हम तलवार के जोर से नहीं लड़े। हमने शांति से लड़ाई की या ठंडी ताकत की लड़ाई की, और उसका नतीजा यह हुआ कि हमारी गोद में आकर आजादी देवी ने रमण करना शुरू कर दिया। ऐसी घटना 15 अगस्त को हो गई।

हम उस रास्ते पर हैं कि जिस पर आते-जाते हुए तुच्छ-से-तुच्छ ग्रामवासी की गुलामी का अंत आएगा और वह हिंदुस्तान के शहरों का दास बनकर नहीं रहेगा; बल्कि देहातों के विचारमय उद्योगों के माल की विज्ञप्ति और बिक्री के लिए शहर के लोगों का उपयोग करेगा।

मैं 2 फरवरी को वर्धा चला जाऊंगा। राजेंद्र बाबू भी मेरे साथ जाएंगे; लेकिन मैं वहां से जल्दी ही लौटने की कोशिश करूंगा। अखबारों में प्रकाशित यह समाचार गलत है कि मैं वहां एक महीने तक ठहरूंगा। लेकिन मैं वर्धा तभी जा सकता हूं जब आप लोग आशीर्वाद देंगे और यह कहेंगे कि अब आप आराम से जा सकते हैं, हम यहां आपस में लड़ने वाले नहीं हैं।

उसके बाद में मैं पाकिस्तान भी जाऊंगा, लेकिन उसके लिए पाकिस्तान सरकार को कहना है कि तू आ सकता है और अपना काम कर सकता है। अगर पाकिस्तान के एक भी सूबे की हुकूमत बुलाएगी तो भी मैं वहां चला जाऊंगा।

जब-जब कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक मेरी उपस्थिति में होती है, तब-तब मैं आपको उसके बारे में कुछ-न-कुछ बता देता हूं। आज कार्यसमिति की दूसरी बैठक हुई और उसमें काफी बातें हुईं। सब बातों में तो आपकी दिलचस्पी भी नहीं होगी, लेकिन एक बात तो आपको बताने लायक है।

कांग्रेस ने 20 साल से यह तय कर लिया था कि देश में जितनी बड़ी भाषाएं हैं, उतने प्रांत होने चाहिए। कांग्रेस ने यह भी कहा था कि हुकूमत हमारे हाथ में आते ही ऐसे प्रांत बनाए जाएंगे। वैसे तो आज भी 9 या 10 प्रांत बने हुए हैं और वे एक मरकज के मातहत हैं। इसी तरह से अगर नये प्रांत बने और सब दिल्ली के मातहत रहे तब तक कोई हर्ज की बात नहीं। लेकिन अगर वे सब अलग-अलग होकर आजाद हो जाएं और एक मरकज के मातहत न रहें तो फिर वह एक निकम्मी बात हो जाती है। अलग-अलग प्रांत बनने के बाद वे यह न समझ लें कि बंबई का महाराष्ट्र से कोई संबंध नहीं। महाराष्ट्र का कर्नाटक से और कर्नाटक का आंध्र से कोई संबंध नहीं। तब तो हमारा काम बिगड़ जाता है। इसलिए सब आपस में भाई-भाई समझें। इसके अलावा अगर भाषावार प्रांत बन जाते हैं तो प्रांतीय भाषाओं की भी तरक्की होती है। वहां के लोगों को हिंदुस्तानी में तालीम देना तो वाहियात है और अंग्रेजी में देना तो और भी वाहियात है।

26 जनवरी, 1948

आज 26 जनवरी स्वतंत्रता का दिन है। जब तक हमारी आजादी की लड़ाई जारी थी और आजादी हमारे हाथ में नहीं आई थी, तब तक इसका उत्सव मनाना जरूर मानी रखता था। किंतु अब आजादी हमारे हाथ में आई गई है और हमने इसका स्वाद चखा है तो हमें लगता है कि आजादी का हमारा स्वप्न एक भ्रम ही था जो कि अब गलत साबित हुआ है। कम-से-कम मुझे तो ऐसा लगता है।

आज हम किस चीज का उत्सव मनाने बैठे हैं? हमारा भ्रम गलत साबित हुआ, इसका नहीं। मगर अपनी इस आशा का उत्सव हमें मनाने का जरूर हक है कि काली-से-काली घटा अब टल गई है और हम उस रास्ते पर हैं कि जिस पर आते-जाते हुए तुच्छ-से-तुच्छ ग्रामवासी की गुलामी का अंत आएगा और वह हिंदुस्तान के शहरों का दास बनकर नहीं रहेगा; बल्कि देहातों के विचारमय उद्योगों के माल की विज्ञप्ति और बिक्री के लिए शहर के लोगों का उपयोग करेगा। वह यह सिद्ध करेगा कि वह सचमुच हिंदुस्तान की भूमि का जायका है।

इस रास्ते पर आगे जाते हुए अंत में सब वर्ग और संप्रदाय एक समान होंगे। यह हरगिज न होगा कि बहुसंख्या अल्पसंख्या पर– चाहे वह कितनी ही कम या तुच्छ क्यों न हो– अपना प्रभुत्व जमाए या उसके प्रति ऊंच-नीच का भाव रखे। हमें चाहिए कि इस आशा के फलीभूत होने में हम ज्यादा देरी

न होने दें कि जिससे लोगों के दिल खट्टे हो जाएं।

दिन-प्रतिदिन की हड़तालों और तरह-तरह की बदअमनी जो देश में चल रही है वह क्या इसी चीज की निशानी नहीं कि आशाएं पूरी होने में बहुत देर लग रही है? यह हमारी कमजोरी और रोग की सूचक है। मजदूर वर्ग को अपनी शक्ति और गौरव को पहचानना चाहिए। उनके मुकाबिले में वह शक्ति या गौरव पूंजीपतियों में कहां है, जो कि हमारे आमवर्ग में भरा है! सुव्यवस्थित समाज में हड़तालों, बदअमनी के लिए अवसर या अवकाश ही नहीं होना चाहिए। ऐसे समाज में न्याय हासिल करने के लिए काफी कानूनी रास्ते होंगे। खुली या छुपी जोरावरी के लिए स्थान ही न होगा। कानपुर या कोयले की खानों में या और कहीं भी हड़तालें होने से सारे समाज और खुद हड़तालियों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। मुझे यह याद दिलाना निकम्मा होगा कि यह लंबा लेक्चर मेरे मुंह में शोभा नहीं देता, जब कि मैंने खुद इतनी सफल हड़तालें करवाई हैं। अगर कोई ऐसे टीकाकार हैं तो उन्हें याद रखना चाहिए कि उस वक्त न तो आजादी थी और न इस किस्म के कानूनी जाब्ते थे जो कि आजकल हैं। कई बार तो मुझे ताज्जुब होता है कि क्या हम सचमुच ताकत की सियासी शतरंज और सत्ता पर चुंगल मारने की वबा (बीमारी) से, जो कि पूर्व और पाश्चात्य के सब देशों में फैल रही है, बचे रह सकते हैं? इससे पहले कि मैं इस विषय को यहां छोड़ूं, मैं यह आशा प्रकट किए बिना नहीं रह सकता कि यद्यपि भौगोलिक व राजनीतिक दृष्टि से हिंदुस्तान दो भागों में बंट गया, पर हमारे दिल जुदा नहीं हुए और हम हमेशा के दोस्त बनकर भाइयों की तरह एक-दूसरे की मदद करते रहेंगे और एक-दूसरे को इज्जत की निगाह से देखेंगे। जहां तक दुनिया का ताल्लुक है, हम एक ही रहेंगे।

कपड़े पर से अंकुश उठाने के फैसले का सब तरफ से स्वागत किया गया है। कपड़े की कमी कभी थी ही नहीं, और हो भी कैसे सकती है, जब कि देश में इतनी रुई, और कातने वाले और बुनने वाले मौजूद हैं! कोयले और जलाने की लकड़ी पर से अंकुश उठने पर भी इतना ही संतोष प्रकट किया गया है। यह बड़ी देखने की चीज है कि अब बाजार में गुड़ जरूरत से ज्यादा आकर जमा हो रहा है, और गुड़ ही गरीब आदमी की खुराक में गर्मी देने वाली चीज के अंश को पूरा कर सकता है। गुड़ के इन जमा हुए ढेरों को घटाने या जहां गुड़ बनता है वहां से गुड़ पहुंचाने की कोई सूरत नहीं, अगर तेजी से सामान ढोने का बंदोबस्त न हो। एक मित्र, जो इस विषय को खूब समझते हैं, एक पत्र में लिखते हैं, वह ध्यान देने लायक हैः

"यह कहने की जरूरत नहीं कि अंकुश उठाने की नीति की सफलता का ज्यादा आधार इस पर ही है कि रेलगाड़ी या सड़क से सामान की नकली हरकत का ठीक-ठीक बंदोबस्त किया जाय। अगर रेल से माल इधर-उधर ले जाने के तंत्र में सुधार न हुआ तो देश भर में कहत (अकाल) अंकुश उठाने की सब योजना अस्त-व्यस्त हो जाने का डर है। आज जिस तरह से माल ले जाने का हमारा तंत्र चल रहा है उससे दोनों, अंकुश चलाने और उठाने की नीति सख्त खतरे में है। हिंदुस्तान के जुदा-जुदा हिस्सों में भावों में इतना भयंकर फर्क होने की वजह भी माल उठाने के साधनों की यह कमी ही है। अगर गुड़ रोहतक में आठ रुपये मन और बंबई में पचास रुपये मन के हिसाब बिकता है तो यह साफ बताता है कि रेलवे तंत्र में कहीं सख्त गड़बड़ी है। महीनों तक मालगाड़ी के डिब्बों में से समान नहीं उतारा जाता, डिब्बों और कोयले की कमी और तरह-तरह के माल को तरजीह देने के बहाने, मालगाड़ी के डिब्बों पर माल लादने में सख्त बेईमानी और घूस का बाजार गर्म है। एक डिब्बे को किराये पर हासिल करने के लिए सैकड़ों रुपये खर्च करने पड़ते हैं और कई-कई दिनों तक स्टेशनों पर झक मारनी पड़ती है। डिब्बों की मांग पूरी करने और डिब्बों को चलते रखने में ट्रांसपोर्ट के मंत्री की भी अभी तक कुछ चली नहीं। अगर अंकुश उठाने की नीति को सफल बनाना है तो ट्रांसपोर्ट के मंत्री को रेल और सड़क की सारी ट्रांसपोर्ट व्यवस्था की फिर से जांच-पड़ताल करनी होगी। तभी यह नीति जिन गरीब लोगों को राहत देने के लिए चलाई जा रही है, उनको फायदा पहुंचा सकेगी। आज इस ट्रांसपोर्ट के कसूर से लाखों और करोड़ों देहातियों को सख्त तकलीफ उठानी पड़ती है और उनका माल मंडी तक पहुंचने ही नहीं पता।"

जैसा मैं पहले लिख चुका हूं, पेट्रोल का राशनिंग बंद करना ही चाहिए और सड़क से सामान ढोने के साधनों का इजारा और परमिट का तरीका बिलकुल बंद होना चाहिए। इजारे में थोड़ी ट्रांसपोर्ट कंपनियों का ही लाभ होता है और करोड़ों गरीबों का जीवन दूभर हो रहा है। अंकुश उठाने की नीति की 95 फीसदी सफलता उपरोक्त शर्तों पर ही निर्भर है। जो सूचनाएं ऊपर दी गई हैं उन पर अमल हुआ तो परिणामस्वरूप देहातों से लाखों टन खाद्य पदार्थ और दूसरा माल देश भर में आने लगेगा। बेईमानी और घूसखोरी का विषय कोई नया नहीं है, केवल अब वह पहले से बहुत ज्यादा बढ़ गया है। बाहर का अंकुश तो कुछ रहा ही नहीं हैं इसलिए यह घूसखोरी तब तक बंद न होगी जब तक जो लोग इसमें पड़े हैं वे समझ न लें कि वे देश के लिए हैं, न कि देश उनके लिए। इसके लिए जरूरत होगी एक ऊंचे

दर्जे के नैतिक शासन की। उन लोगों की तरफ से, जो खुद घूसखोरी के इस मर्ज से बचे हुए हैं और घूसखोर अमलदारों पर जिनका प्रभाव है, ऐसे मामलों में उदासीनता दिखाना गुनाह है। अगर हमारी संध्याकालीन प्रार्थना में कुछ भी सच्चाई है तो घूसखोरी के इस दौर को खत्म करने में उससे काफी मदद मिलनी चाहिए।

27 जनवरी, 1948

आज गांधीजी की प्रार्थना-सभा में एक ही मुसलमान उपस्थित था। गांधीजी ने कहा कि मैं इतने से ही संतुष्ट नहीं हूं। प्रार्थना में आने वाले सब हिंदू और सिख भाई-बहन अपने साथ एक-एक मुसलमान लाएं। इसके बाद गांधीजी ने महरौली की दरगाह शरीफ में मुसलमानों के उर्स के मेले का जिक्र किया जिसे वे स्वयं आज सवेरे देखने गए थे। उन्होंने कहाः

मेरे नजदीक तो चाहे थोड़ा गुनाह करो या ज्यादा, इसकी कोई तुलना मैं नहीं करता। वह शर्मनाक बात है। अगर सारी दुनिया शर्मनाक बात करती है तो क्या हम भी करें? नहीं करना चाहिए, ऐसा आप भी मानेंगे।

किसी को वहां आने-जाने में झिझक नहीं थी। मैंने जान-बूझकर मुसलमानों से पूछा कि हमेशा जितने आते थे उतने तो नहीं आ सके होंगे, तो उन्होंने कहा कि कुछ डर तो रहा होगा ही। हमारे में ऐसे लोग भी हैं न कि जो डर-सा बता देते हैं। वे कहते हैं कि इलाहाबाद में भी कुछ हो गया है, वही यहां हुआ तो हिंदू क्या करेंगे? इंसान इंसान से डरे, यह तो हमारे लिए शर्म की बात है। लेकिन कम-से-कम इतना तो मैंने पाया कि जितनी तादाद मुसलमानों की थी उतनी ही तादाद हिंदुओं की थी और सिख भी काफी थे। पीछे एक दुखद बात भी मैंने देखी। वह दरगाह तो बादशाही जमाने की है, कोई आज की थोड़े ही है। बहुत पुराने जमाने की है। अजमेर की दरगाह शरीफ से दूसरे नंबर पर है, तो जो मुख्य वस्तु है वह तो वहां नक्काशी का काम ही था और बड़ा खूबसूरत था। वह सब तो नहीं, लेकिन काफी ढहा दिया है और जो नक्काशी की जालियां थीं वे भी काफी तोड़ डालीं। मुझको तो यह देखकर बहुत दुख हुआ। मैं तो उसे वहशियाना चीज ही कह सकता हूं। क्या हम इतने गिर गए हैं कि एक जगह पर किसी औलिया की कब्र बनाई गई है और कब्र भी बहुत आलीशान, हजारों रुपया उस पर खर्च किया है, उसको हम इस तरह नुकसान पहुंचाएं? माना कि इससे भी बदतर पाकिस्तान में हुआ है। यहां एक गुनाह हुआ और

वहां दस गुनाह हुआ इसका हिसाब मैं नहीं कर रहा। मेरे नजदीक तो चाहे थोड़ा गुनाह करो या ज्यादा, इसकी कोई तुलना मैं नहीं करता। वह शर्मनाक बात है। अगर सारी दुनिया शर्मनाक बात करती है तो क्या हम भी करें? नहीं करना चाहिए, ऐसा आप भी मानेंगे।

मुझको पता चला कि दरगाह में हिंदू और मुसलमान, दोनों काफी तादाद में आते हैं और मिन्नत भी करते हैं। उसका बड़ा दर्जा वे रखते हैं और जो औलिया हो गए हैं, यहां या अजमेर शरीफ, उनके दिल में भी हिंदू-मुसलमान का कोई भेदभाव नहीं था। यह तो एक ऐतिहासिक बात थी और सच तो है ही। झूठ बताने में तो उनको कोई फायदा नहीं होता। ऐसे जो औलिया हो गए उनका आदर होना ही चाहिए। पाकिस्तान में क्या होता है, उस तरफ हम न देखें।

आज ही मैंने अखबारों में देखा है कि पाकिस्तान में एक जगह 130 हिंदू और सिख कत्ल हो गए हैं। और पीछे वहां लूटमार भी हुई। किसने उनको कत्ल किया? सरहदी सूबे के ऊपर जो छोटी-छोटी कौमें मुसलमानों की रही हैं, उन्होंने बस उन पर हमला किया और उन्हें मार डाला। कोई गुनाह उन्होंने किया था, ऐसा कोई नहीं कहता। पाकिस्तान की हुकूमत ने जो कुछ लिखा है उसमें यह भी है कि हुकूमत ने कई हमलावरों को मार डाला। मार डाला या नहीं मार डाला, लेकिन जब वे कहते हैं तो हमें मान ही लेना चाहिए। इस पर हम गुस्सा करें और हम भी यहां मारना शुरू कर दें तो वह एक वहशियाना चीज होगी। आज तो आप भाई-भाई होकर मिलते हैं, लेकिन दिल में अगर गंदगी रखते हैं और वैर या द्वेष करते हैं तो फिर आपने जो यह प्रतिज्ञा की थी कि हम दिल में भी ऐसा नहीं रखेंगे, उसे आप झुठला देते हैं। पीछे हम सबका खाना खराब होने वाला है। यह वहां सबने महसूस किया। किसी से मैंने पूछा तो नहीं, लेकिन आंखों से मैं समझ गया। पाकिस्तान में जो कुछ हुआ उसका हिसाब लेना तो हमारी हुकूमत का काम है, वह जाने। हमारा काम तो यही है कि एक-दूसरे का दिल साफ करने की जो कसम हमने खाई है, उसे कायम रखें और वही चीज हम करें।

पाकिस्तान में जो कुछ हुआ उसका हिसाब लेना तो हमारी हुकूमत का काम है, वह जाने। हमारा काम तो यही है कि एक-दूसरे का दिल साफ करने की जो कसम हमने खाई है, उसे कायम रखें और वही चीज हम करें।

अभी अजमेर में राजकुमारी बहन चली गई थीं। उन्होंने वहां की एक

बड़ी खतरनाक और हमारे लिए तो शर्म की बात सुनाई। वहां जो हरिजन रहते हैं उनसे वहां वाले काम लेते हैं और वे करते भी हैं। लेकिन जिस जगह में वे रहते हैं वह बहुत गंदी और मैली है। वहां तो हमारी ही हुकूमत है और अच्छी-खासी हुकूमत है। जो हिंदू और सिख वहां अमलदार हैं, वे इसी हुकूमत के मातहत काम करते हैं। क्या उन्हें ख्याल नहीं आता कि ऐसा शर्म का काम हम कैसे करते हैं? वहां सफेद पोशाक पहनने वाले बहुत हिंदू हैं। पैसा खासा कमाते हैं और खुश हालत में रहते हैं। वे क्यों नहीं एक दिन के लिए भी हरिजनों की बस्ती में जाकर रहें? वे अगर जाएं तो कै कर लेंगे और कई तो शायद उनमें से मर भी जाएं। ऐसी जगह इंसानों को रखना– क्योंकि उनका यह गुनाह है कि वे हरिजन पैदा हुए हैं– बहुत बुरी बात है। यहां दिल्ली में भी हरिजनों की बस्ती में गया हूं। वह भी खराब तो बहुत है, लेकिन अजमेर तो इससे भी बदतर है। यह तो बड़ी शर्मनाक बात है। क्या ऐसी शर्मनाक बातें ही हम लोग करते रहेंगे? हमने आजादी तो पाई, लेकिन उस आजादी की कोई कीमत नहीं, जब तक हम इस तरह का काम भी नहीं बंद कर सकते। यह तो एक दिन में हो सकता है। क्या हम इन हरिजनों को सूखी जगह में नहीं रख सकते? उनको मैला उठाने का काम करना है, वह तो करें, लेकिन मैले में ही पड़े रहें, ऐसा तो नहीं हो सकता। हमारी तो आज अक्ल चली गई है, हमारा हृदय नहीं रहा है और ईश्वर को हम भूल गए हैं। इसीलिए तो गुनाह के काम हम करते जाते हैं। और पीछे हम दूसरों का ऐब निकालें, दूसरों को दोष दें और खुद निर्दोष बनें, यह बड़ी खतरनाक बात है।

मैं इस्लाम को काफी जानता हूं और काफी पढ़ा भी है। वह कभी नहीं सिखाता कि औरतों को उठा ले जाओ और उनको इस तरह से रखो। वह धर्म नहीं, अधर्म है, वह शैतान की पूजा है, ईश्वर की पूजा नहीं।

अंत में एक और बात मैं कहना चाहता हूं और वह है मीरपुर के बारे में। एक दफा तो थोड़ा-सा मैंने कह भी दिया था। मीरपुर कश्मीर में है। अब वह हमलावरों के हाथ में चला गया है। वहां हमारी काफी बहनें थीं। उनको वे उठा ले गए हैं। उनमें बुड्ढी भी हैं और नौजवान भी। वे उनके कब्जे में पड़ी हैं और उनको वे बेआबरू भी कर लेते हैं, इसमें मेरे दिल में कोई शक नहीं है। खाना भी उनको बुरा दिया जाता है। चंद बहनें तो पाकिस्तान के इलाके में हैं। गुजरात जिले में झेलम तक तो शायद पहुंची होंगी ही।

मैं तो कहूंगा कि जो हमलावर हमला कर रहे हैं, उनमें कुछ भी तो

मर्यादा या कुछ हद तो होनी ही चाहिए। मैं इन हमलावरों से कहता हूं कि आप इस्लाम को बिगाड़ने के लिए यह काम कर रहे हैं और कहते हैं कि आजाद कश्मीर के लिए करते हैं।

कोई खाने के लिए लूटपाट करे, वह मैं समझ सकता हूं, लेकिन जो छोटी लड़कियां हैं उनको बेइज्जत करना, उनको खाने और पहनने को न देना वह भी क्या आपको कुरान शरीफ ने सिखाया है? और जो पीछे पाकिस्तान में लड़कियों को उठाकर चले गए हैं, उनके बारे में मैं पाकिस्तान हुकूमत से मिन्नत करूंगा कि इस तरह से जो भी कोई लड़कियां हैं उनको वापस करो और उन्हें अपने घरों पर जाने दो।

बेचारे मीरपुर के लोग मेरे पास आए हैं। काफी तगड़े हैं और शर्मिंदा होते हैं। मुझको वे सुनाते भी हैं कि क्या वजह है कि हमारी इतनी बड़ी भारी हुकूमत पड़ी है, वह इतना काम भी नहीं कर सकती। मैंने समझाने की कोशिश तो की। जवाहरलालजी खुद कोशिश कर रहे हैं और बहुत दुखी हैं। लेकिन उनके दुखी होने से और उनके कोशिश करने से भी क्या है! जो लोग लुट गए हैं, बरबाद हो गए हैं और जिन्होंने अपने रिश्तेदारों को गंवा दिया है, उनको कैसे संतोष दिलाया जाए? आज जो आदमी आया उसके पंद्रह आदमी वहां कत्ल हो गए। उसने कहा कि अभी जो वहां बाकी पड़े हैं उनका क्या हाल होने वाला है? मैंने सोचा कि दुनिया के नाम से और ईश्वर के नाम से वे जो हमलावर पड़े हैं उनको और पीछे पाकिस्तान को भी मैं यह कहूं कि आपको बगैर मांगे हुए और शोहरत के साथ उन बहनों को वापस कर देना चाहिए। यह उनका धर्म है। मैं इस्लाम को काफी जानता हूं और काफी पढ़ा भी है। वह कभी नहीं सिखाता कि औरतों को उठा ले जाओ और उनको इस तरह से रखो। वह धर्म नहीं, अधर्म है, वह शैतान की पूजा है, ईश्वर की पूजा नहीं।

28 जनवरी, 1948

आरंभ में गांधीजी ने बहावलपुर से आए हुए कुछ लोगों की शिकायत का जिक्र किया कि उन्हें उनसे मिलने का समय नहीं दिया गया। गांधीजी ने उनके लिए कुछ समय निकालने का वचन दिया और उन्हें विश्वास दिलाते हुए कहाः

उनके लिए जो भी किया जा सकता है, वह हो रहा है। डॉ. सुशीला नायर और श्री लेस्ली क्रॉस बहावलपुर चले गए हैं और नवाब साहब ने उनकी पूरी सहायता करने के लिए कहा है। भगवान की कृपा से यूनियन की राजधानी दिल्ली में तीनों जातियों में फिर से शांति कायम हो गई है। इससे

सारे हिंदुस्तान में हालत जरूर सुधरेगी।

आप जानते हैं कि दक्षिण अफ्रीका में हमारे लोग अपने हकों के लिए लड़ रहे हैं। यहां तो कोई ऐसे हक छीनते नहीं हैं कि लोग कहीं जमीन न रख सकें या कहीं भी रहना चाहते हैं, वहां न रह सकें। हरिजनों का तो हमने जरूर ऐसा हाल कर दिया है, बाकी हिंदुस्तान में ऐसा कुछ है ही नहीं। लेकिन दक्षिण अफ्रीका में तो ऐसा है, इसका मैं गवाह हूं। इसलिए वे वहां हिंदुस्तान का मान रखने के कारण और हिंदुस्तान के हक के लिए लड़ रहे हैं। बहुत तरीकों से वे लड़ सकते हैं, लेकिन वे तो सत्याग्रही होने का दावा करते हैं। इसलिए सत्याग्रह की लड़ाई लड़ रहे हैं। उनके तार भी आ जाते हैं। वे बिना परवाने के कहीं जा भी नहीं सकते– जैसे नेटाल, ट्रांसवाल, हिल स्टेट, केप कोलोनी वगैराह, ऐसा सिलसिला वहां रहा है। दक्षिण अफ्रीका एक खंड जैसा है, कोई छोटा-मोटा मुल्क नहीं है। बहुत बड़ा है। नेटाल से अगर परवाना मिले तो वे ट्रांसवाल जाएं, नहीं तो नहीं। तो उन सबने कहा कि यह हमारा भी मुल्क है, तब क्यों हमारे इधर-उधर आने में किसी तरह की रुकावट हो? बहुत से तो वहां चले भी गए और मुझको यह तो कहना ही पड़ेगा कि वहां की हुकूमत ने इस वक्त तो कुछ शराफत बताई है। उनको अभी तक पकड़ा नहीं। ट्रांसवाल का जो पहला शहर आता है फाकसेस, वहां वे चले गए हैं। पीछे कहीं उनको पकड़ सकते हैं लेकिन अभी तक पकड़ा नहीं है। हुकूमत के सिपाही तो वहां मौजूद थे, लेकिन वे सब देखते रहे और उनको कुछ नहीं कहा। वहां तो उन्हें मोटर भी खड़ी मिली और उसमें बैठकर वे आगे चले गए और वहां पर उनका जलसा हुआ, जिसमें उनका स्वागत-सत्कार किया गया। वह सब हुआ। मैंने सोचा कि आपको इतनी खबर तो दे दूं। यह एक बड़ी बहादुरी का काम है। वहां हिंदुस्तानी छोटी तादाद में हैं, लेकिन छोटी तादाद में रहते हुए भी अगर सब हिंदी सत्याग्रही बन जाएं तो उनकी जय ही है, कोई रुकावट उनके आगे नहीं ठहर सकती। लेकिन ऐसा तो नहीं बना है। हर किस्म के लोग वहां रहते हैं, जैसे यहां भी रहते हैं। वहां थोड़े हिंदू भी हैं और मुसलमान भी हैं। वे सब मिलजुल कर यह काम करते हैं। वे जानते हैं कि इसमें कोई गमाने की बता नहीं हैं और अकेले आदमियों से तो यह लड़ाई लड़ी भी नहीं जाती।

मैं किसी के कहने से कैसे भाग सकता हूं? किसी के कहने से मैं खिदमतगार नहीं बना हूं, किसी के कहने से मैं मिट नहीं सकता हूं, ईश्वर के चाहने से मैं जो हूं बना हूं। ईश्वर को जो करना है सो करेगा। ईश्वर चाहे तो मुझको मार सकता है।

इसलिए वे जोहन्सबर्ग में पहुंच तो गए हैं, लेकिन आखिर तक तो अलग नहीं रह सकते, ऐसा मेरा खयाल है। उनको चलते ही जाना है, आखिर तक भी जाना है जब तक कि पकड़े न जाएं। पकड़ने का वहां की हुकूमत को हक है, क्योंकि सत्याग्रह में यह चीज तो पड़ी है कि जब कानून भंग किया है तो उनको पकड़े, और जेल के भीतर जाकर भी वे कानून की पाबंदी करते हैं। मैं तो इतना ही कहूंगा कि हमारी तरफ से धन्यवाद तो उनको मिलना ही चाहिए और वह है ही; क्योंकि मैं जानता हूं कि इसमें कोई दूसरी आवाज निकल ही नहीं सकती। वहां की हुकूमत से भी मैं कहता हूं कि जो लोग ऐसे लड़ते हैं और इतनी शराफत से लड़ते हैं उनको हलाक क्या करना है! उनकी चीज को समझ लें और फिर आपस में समझौता क्यों न कर लें? ऐसा क्यों हो कि जिसकी सफेद चमड़ी है वह काली चमड़ी वाले के साथ कुछ बहस नहीं कर सकता? या हिंदुस्तानियों को जो संतोष देना है या इंसाफ करना है तो उसके लिए उनको लड़ना क्यों पड़े? अगर हिंदुस्तानी भी उसी जगह में रहें तो उन्हें (गोरों को) कौन-सा कष्ट हो सकता है? उन्हें कोई कष्ट नहीं होना चाहिए। दक्षिण अफ्रीका की हुकूमत को उनके साथ सलाह-मशविरा करके सलूक से रहना चाहिए और उनको संतोष दिलाना चाहिए। आज हम भी आजाद हैं और वे भी आजाद हैं और एक ही हुकूमत में हिस्सेदारी की हैसियत से रहते हैं अर्थात् दक्षिण अफ्रीका भी एक डोमीनियन (उपनिवेश) है, इंडियन यूनियन भी डोमीनियन है और पाकिस्तान भी डोमीनियन है। तब सब भाई-भाई जैसे बनकर रहें, यह सब उनके गर्भ में पड़ा है। इसके विपरीत वे आपस-आपस में लड़ें और हिंदुस्तान को अपना दुश्मन मानें— हिंदुस्तानियों को जब वहां शहरी हक भी न मिले तो फिर वे दुश्मन नहीं हैं तो और क्या हुए? तो यह समझ में न आ सके, ऐसी चीज है। क्यों ऐसा माना जाए कि जो काली चमड़ी वाले हैं वे निकम्मे हैं या वे जो उद्यम कर सकते हैं और थोड़े पैसे में रह सकते हैं, तो क्या यह कोई गुनाह है? लेकिन वह गुनाह बन गया है। इसलिए इस सभा की मार्फत मैं दक्षिण अफ्रीका की हुकूमत को कहता हूं कि वह सही रास्ते पर चले। मैं भी वहां 20 वर्ष तक रहा हूं। इसलिए मेरा भी वह मुल्क बन गया है, ऐसा मैं कह सकता हूं। यह सब कहना तो मुझको कल ही चाहिए था, लेकिन कह नहीं पाया।

मैसूर के मुसलमानों ने कुछ दिन पहले एक पत्र भेजा था कि तुम्हारे उपवास का वहां कोई असर नहीं पड़ा और मुसलमानों को हलाक किया जा रहा है। इसके बारे में मैंने कुछ कहा भी था। उसके उत्तर में मैसूर के गृह मंत्री की ओर से एक तार मिला जिसमें पहले तार का खंडन किया गया और

यह बताया गया है कि वहां मुसलमानों के साथ इंसाफ करने की पूरी कोशिश की जा रही है। जैसे मैं सबसे कहता हूं वैसे मैं मैसूर के उन मुसलमान भाइयों से कहूंगा कि वे किसी बात में भी अतिशयोक्ति न करें। ऐसा करने से मेरे हाथ-पैर बंध जाते हैं और मैं कुछ काम नहीं कर सकता। मैं पहले भी कह चुका हूं और फिर से मुसलमान भाइयों से कहता हूं कि वे किसी चीज को ज्यादा बढ़ा कर न बताएं। अगर कर सकते हैं तो कम करें। यही रास्ता है हिंदू, मुसलमान और सिखों के मिलकर-जुलकर तथा भाई-भाई बनकर रहने का। मैं तो इतना बूढ़ा हो गया हूं, तो भी सारी दुनिया में दूसरा कोई रास्ता मैंने नहीं पाया।

हमारे लोग इतने भोले हैं कि डाक में ही पैसा भेज देते हैं। मुझे अपने बाप के समय से तजुर्बा है। उनके पास कुछ जेवर था। एक छोटा-सा मोती था लेकिन था कीमती। उसे उन्होंने डाक से भेज दिया। तब से मैं जानता हूं कि ऐसा करना नहीं चाहिए। उसमें कोई चोरी तो नहीं थी, लेकिन खतरा तो लेना पड़ता ही है। कोई डाक में देख ले और खोल ले तो फिर मोती कोई छुपा थोड़े ही रह सकता है। और पैसे तो फिर भी देने ही पड़े, क्योंकि उसकी पहुंच का तार मंगवाया। तो मेरे पिता को इस चीज का दुख हुआ। लेकिन आज भी मेरे पिता के जैसे भोले आदमी हैं। समझ लेते हैं कि पैसे को भेजना है, तो कौन बीच में उसको छुएगा? आज तक तो खैर ऐसे ही पैसे आते रहे। एक भाई ने तो एक हजार से ऊपर के नोट बंद करके भेज दिए। उसकी रजिस्टरी भी नहीं कराई और न बीमा। जो लिफाफे पर मामूली टिकट लगते हैं वे लगाकर भेज दिया। आजकल तो सब लोग बहुत बिगड़ गए हैं, पैसे खा जाते हैं और रिश्वत भी लेते हैं। हमारे पोस्ट ऑफिस के लिए यह कोई छोटी बात नहीं है कि इस तरह से इतने सुरक्षित पैसे भी आज जाते हैं। उसे वे देखना भी नहीं चाहते कि उसमें क्या भेजा है। ऐसे जब वे मुझको सब कुछ सुरक्षित भेज देते हैं तो दूसरों को भी इसी तरह से भेज देते होंगे। लेकिन जो लोग पैसा भेजते हैं वे चाहे इतना पैसा कम करके भेजें, लेकिन तो भी इस तरह से खतरे में नहीं पड़ना चाहिए; क्योंकि कोई बदमाश भी तो रहते हैं। डाक को खोल लें तब मेरे और जिन हरिजनों के लिए पैसा भेजा है उनके क्या हाल होने वाले हैं और जो दान देने वाले हैं उनका क्या हाल होगा? लेकिन डाकखाने में जो आदमी काम करते हैं उनको तो मैं मुबारकबाद देता हूं कि इस तरह से काम करते हैं कि कोई घूस नहीं लेते। बाकी जो सब महकमे हैं वे भी सब ऐसा ही करें कि जो लोगों का पैसा हो उसकी हिफाजत करें, किसी से रिश्वत का पैसा न लें, तो हम बहुत आगे बढ़

जाते हैं। ऐसा लालच किसी को होना ही नहीं चाहिए। इसलिए मैं इन दानियों से कहूंगा कि आप मनिऑर्डर भेज दें। उसमें कितना पैसा लगता है? ऐसा भी न करें तो रजिस्टरी करा दें। इसमें कुछ थोड़ा-सा पैसा ज्यादा भी लगता है तो वह खैरियत से तो पहुंच जाता है। ऐसा आप न करें कि मामूली डाक से हजारों रुपये के नोट भेज दिये।

29 जनवरी, 1948

मेरे सामने कहने को चीज तो काफी पड़ी हैं, उनमें से जो आज के लिए चुननी चाहिए, वे चुन ली हैं। छः चीजें हैं। पंद्रह मिनट में जितना कह सकूंगा, कहूंगा।

एक बात तो देख रहा हूं कि थोड़ी देर हो गई है, यह होनी नहीं चाहिए थी। सुशीला बहन बहावलपुर चली गई हैं। बहावलपुर में दुखी आदमी हैं, उनको देखने के लिए चली गई हैं– दूसरा अधिकार तो कोई है नहीं और न हो सकता था। फ्रेंड्स सर्विस के लेस्ली क्रॉस के साथ चली गई हैं। फ्रेंड्स यूनिट में से किसी को भेजने का मैंने इरादा किया था ताकि वह वहां लोगों को देखें, मिलें और मुझको वहां के हाल बता दें। उस वक्त सुशीला बहन के जाने की बात नहीं थी, लेकिन जब सुशीला बहन ने सुन लिया तो उसने मुझसे कहा कि इजाजत दे दो तो मैं क्रॉस साहब के साथ चली जाऊं। वह जब नोआखाली में काम करती थी तब से वह उनको जानती थी। वह आखिर कुशल डॉक्टर है और पंजाब के गुजरात की है, उसने भी काफी गंवाया है; क्योंकि उसकी तो वहां काफी जायदाद है, फिर भी दिल में कोई जहर पैदा नहीं हुआ है। तो उसने बताया कि मैं वहां क्यों जाना चाहती हूं; क्योंकि मैं पंजाबी बोली जानती हूं, हिंदुस्तानी जानती हूं, उर्दू और अंग्रेजी भी जानती हूं तो वहां मैं क्रॉस साहब को मदद दे सकूंगी। तो मैं यह सुनकर खुश हो गया। वहां खतरा तो है; लेकिन उसने कहा कि मुझको क्या खतरा है, ऐसा डरती तो नोआखाली क्यों जाती? पंजाब में बहुत लोग मर गए हैं, बिलकुल मटियामेट हो गए हैं; लेकिन मेरा तो ऐसा नहीं है, खाना-पीना सब मिल जाता है, ईश्वर सब करता है। अगर आप भेज दें और क्रॉस साहब मेरे को ले जाएं तो मैं वहां के लोगों को देख लूंगी। तो मैंने क्रॉस साहब से पूछा कि क्या आपके साथ सुशीला

जो आदमी अपनी जमीन में से पैदा करता है और खाता है, सो जनरल बने, प्रधान बने, तो हिंदुस्तान की शकल बदल जाएगी। आज जो सड़ा पड़ा है, वह नहीं रहेगा।

बहन को भेजूं? तो वे खुश हो गए और कहा कि यह तो बड़ी अच्छी बात है। मैं उनके मार्फत दूसरों से अच्छी तरह बातचीत कर सकूंगा। मित्रवर्ग में हिंदुस्तानी जानने वाला कोई रहे तो वह बड़ी भारी चीज हो जाती है। इससे बेहतर क्या हो सकता है? वे रेडक्रॉस के हैं। रेडक्रॉस के माने यह है कि लड़ाई में जो मरीज हो जाते हैं उनको दवा देने का काम करना। अब तो दूसरा-तीसरा भी काम करते हैं। तो डॉक्टर सुशीला क्रॉस साहब के साथ गई हैं या डॉक्टर सुशीला के साथ क्रॉस साहब गए हैं, यह पेचीदा प्रश्न हो जाता है। लेकिन कोई पेचीदा है नहीं, क्योंकि दोनों एक-दूसरे के दोस्त हैं और दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं, मोहब्बत करते हैं। वे सेवा-भाव से गए हैं, पैसा कमाना तो है नहीं। वे जो देखेंगे मुझे बताएंगे और सुशीला बहन भी बताएंगी। मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसा गुमान रखे कि वह तो डॉक्टर हैं और क्रॉस साहब दूसरे हैं। कौन ऊंचा कौन नीचा है, ऐसा कोई भेदभाव न करें; लेकिन क्रॉस साहब, उनके साथ औरत हैं तो औरत को आगे कर देते हैं और अपने को पीछे रखते हैं। आखिर वे उनके दोस्त हैं। मैं एक बात और कह देना चाहता हूं कि नवाब साहब तो मुझको लिखते रहते हैं। मुझको कई लोग झूठ बात भी लिखते हैं तो उसे मानने का मेरा क्या अधिकार है। मैंने सोचा कि मुझको क्या करना चाहिए। तो बहावलपुर के जो आए हैं उनको बता दूं कि वे वहां से आएंगे तो मुझको सब बात बता देंगे।

कोई कहता है कि यहीं रहो, कोई तारीफ करता है, कोई डांटता है, कोई गाली देता है। तो मैं क्या करूं? ईश्वर जो हुक्म करता है वही मैं करता हूं। आप कह सकते हैं कि आप ईश्वर को नहीं

अभी बन्नू के भाई लोग मेरे पास आ गए थे— शायद चालीस आदमी थे। वे परेशान तो हैं लेकिन ऐसे नहीं हैं कि चल नहीं सकते थे। हां, किसी की अंगुली में घाव लगे थे, कहीं कुछ था, कहीं कुछ था, ऐसे थे। मैंने तो उनका दर्शन ही किया और कहा कि जो कुछ कहना है बृजकिशनजी से कह दें, लेकिन इतना समझ लें कि मैं उन्हें भूला नहीं हूं। वे सब भले आदमी थे। गुस्से से भरे होना चाहिए था, लेकिन फिर भी वे मेरी बात मान गए। एक भाई थे, वे शरणार्थी थे या कौन थे, मैंने पूछा नहीं। उसने कहा कि तुमने बहुत खराबी तो कर ली है, क्या और करते जाओगे? इससे बेहतर है कि जाओ। बड़े हैं, महात्मा हैं तो क्या, हमारा काम तो बिगाड़ते ही हो। तुम हमको छोड़ दो, भूल जाओ, भागो। मैंने पूछा, कहां जाऊं? उन्होंने कहा, तुम हिमालय जाओ। तो मैंने डांटा। वे मेरे जितने बुजुर्ग नहीं हैं, वैसे बुजुर्ग हैं,

तगड़े हैं, मेरे जैसे पांच-सात आदमी को चट कर सकते हैं। मैं तो महात्मा रहा, घबराहट में पड़ जाऊं तो मेरा क्या होगा! तो मैंने हंसकर कहा कि क्या मैं आपके कहने से जाऊं, किसकी बात सुनूं? क्योंकि कोई कहता है कि यहीं रहो, कोई तारीफ करता है, कोई डांटता है, कोई गाली देता है। तो मैं क्या करूं? ईश्वर जो हुक्म करता है वही मैं करता हूं। आप कह सकते हैं कि आप ईश्वर को नहीं मानते हैं तो इतना तो करें कि मुझे अपने दिल के अनुसार करने दें। आप कह सकते हैं कि ईश्वर तो हम हैं। मैंने कहा तो परमेश्वर कहां जाएगा? ईश्वर तो एक है। हां, यह ठीक है कि पंच परमेश्वर है, लेकिन यह पंच का सवाल नहीं है। दुखी का बेली परमेश्वर है; लेकिन दुखी खुद परमात्मा नहीं। जब मैं दावा करता हूं कि जो हर एक स्त्री है, मेरी सगी बहन है, लड़की है तो उसका दुख मेरा दुख है। आप ऐसा क्यों मानते हैं कि मैं दुख को नहीं जानता, आपके दुख में मैं हिस्सा नहीं लेता, मैं हिंदुओं और सिखों का दुश्मन हूं और मुसलमानों का दोस्त हूं। उसने साफ-साफ कह दिया। कोई गाली देकर लिखता है, कोई विवेक से लिखता है कि हमको छोड़ दो, चाहे हम दोजख में जाएं तो क्या? तुमको क्या पड़ी है, तुम भागो? मैं किसी के कहने से कैसे भाग सकता हूं? किसी के कहने से मैं खिदमतगार नहीं बना हूं, किसी के कहने से मैं मिट नहीं सकता हूं, ईश्वर के चाहने से मैं जो हूं बना हूं। ईश्वर को जो करना है सो करेगा। ईश्वर चाहे तो मुझको मार सकता है। मैं समझता हूं कि मैं ईश्वर की बात मानता हूं। एक डांटता है, दूसरे लोग मेरी तारीफ करते हैं तो मैं क्या करूं। मैं हिमालय क्यों नहीं जाता? वहां रहना तो मुझको पसंद पड़ेगा। ऐसा नहीं है कि मुझको वहां खाने-पीने ओढ़ने को नहीं मिलेगा— वहां जाकर शांति मिलेगी, लेकिन मैं अशांति में से शांति चाहता हूं, नहीं तो उस अशांति में मर जाना चाहता हूं। मेरा हिमालय यहीं है। आप सब हिमालय चलें तो मुझको भी आप लेते चलें।

मेरे पास शिकायतें आती हैं— सही शिकायतें हैं— कि यहां शरणार्थी पड़े हैं। उनको खाना देते हैं, पानी देते हैं, पहनने को देते हैं, जो हो सकता है सब करते हैं; लेकिन वे मेहनत नहीं करना चाहते हैं, काम नहीं करना चाहते हैं। जो उनकी खिदमत करते हैं उन लोगों ने लंबा-चौड़ा लिखकर दिया है, उसमें से मैं इतना ही कह देता हूं। मैंने तो कह दिया है कि अगर दुख मिटाना चाहते हैं, दुख में से सुख निकालना चाहते हैं, दुख में भी हिंदुस्तान की सेवा करना चाहते हैं, साथ में अपनी भी सेवा हो जाती है, तो दुखियों को काम तो करना ही चाहिए। दुखी को ऐसा हक नहीं है कि वह काम न करे और मौज-शौक करे। गीता में तो कहा है, 'यज्ञ करो और खाओ'— यज्ञ

करो और शेष रह जाता है उसको खाओ। यह मेरे लिए है और आपके लिए नहीं है, ऐसा नहीं है। सबके लिए है। जो दुखी हैं उनके लिए भी है। एक आदमी कुछ करे नहीं, बैठा रहे और खाए तो ऐसा हो नहीं सकता। करोड़पति भी काम न करे और खावे तो वह निकम्मा है, पृथ्वी पर भार है। जिस आदमी के घर पैसा भी है वह भी मेहनत करके खाए तब बनता है। हां, कोई लाचारी है, पैर नहीं चल सकता है या अंधा है, या वृद्ध हो गया है तो बात दूसरी है; लेकिन जो तगड़ा है, वह क्यों न काम करे? जो काम कर सकता है वह काम करे। शिविर में जो तगड़े पड़े हैं वे पाखाना भी उठाएं, चर्खा चलाएं, जो काम बन सकता है, करें। जो काम नहीं जानते हैं वे काम लड़कों को सिखाएं, इस तरह से काम लें। लेकिन कोई कहे कि कैंब्रिज में जैसे सिखाते हैं वैसे सिखाएं? मैं, मेरा बाबा तो कैंब्रिज में सीखा था तो लड़कों को भी वहां भेजें, तो यह कैसे हो सकता है? मैं तो इतना ही कहूंगा कि जितने शरणार्थी हैं वे काम करके खाएं। उन्हें काम करना ही चाहिए।

आज एक सज्जन आए थे। उनका नाम तो मैं भूल गया। उन्होंने किसानों की बात की। मैंने कहा, मेरी चले तो हमारा गवर्नर-जनरल किसान होगा, हमारा बड़ा वजीर किसान होगा, सब कुछ किसान होगा, क्योंकि यहां का राजा किसान है। मुझे बचपन से सिखाया था। एक कविता "हे किसान तू बादशाह है।" किसान जमीन से पैदा न करे तो हम क्या खाएंगे? हिंदुस्तान का सचमुच राजा तो वही है। लेकिन आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे हैं। आज किसान क्या करें? एम.ए. बनें? बी.ए. बनें?— ऐसा किया, तो किसान मिट जाएगा। पीछे वह कुदाली नहीं चलाएगा। जो आदमी अपनी जमीन में से पैदा करता है और खाता है, सो जनरल बने, प्रधान बने, तो हिंदुस्तान की शकल बदल जाएगी। आज जो सड़ा पड़ा है, वह नहीं रहेगा।

मद्रास में खुराक की तंगी है। मद्रास सरकार की तरफ से दूत यह कहने के लिए श्री जयरामदास के पास आए थे कि वे उस सूबे के लिए अन्न देने का बंदोबस्त करें। मुझे मद्रास वालों के इस रुख से दुख होता है। मैं मद्रास के लोगों को यह समझाना चाहता हूं कि वे अपने ही सूबे में मूंगफली, नारियल और दूसरे खाद्य पदार्थों के रूप में काफी खुराक पा सकते हैं। उनके यहां मछली भी काफी है, जिन्हें उनमें से ज्यादातर लोग खाते हैं। तब उन्हें भीख मांगने के लिए बाहर निकलने की क्या जरूरत है? उनका चावल का आग्रह रखना— वह भी पॉलिश किया हुआ चावल, जिसके सारे पोषक तत्त्व मर जाते हैं— या चावल न मिलने पर मजबूरी से गेहूं मंजूर करना ठीक नहीं है। चावल के आटे में से मूंगफली या नारियल का आटा मिला सकते हैं और

इस तरह अकाल के भेड़िये को आने से रोक सकते हैं। उन्हें जरूरत है आत्मविश्वास और श्रद्धा की । मद्रासियों को मैं अच्छी तरह से जानता हूं और दक्षिण अफ्रीका में उस प्रांत के सभी भाषा वाले हिस्सों के लोग मेरे साथ थे। सत्याग्रह-कूच के वक्त उन्हें रोजाना के राशन में सिर्फ डेढ़ पौंड रोटी और एक औंस शक्कर दी जाती थी। मगर जहां कहीं उन्होंने रात को डेरा डाला, वहां जंगल की घास में से खाने लायक चीजें चुनकर और मजे से गाते हुए उन्हें पकाकर उन्होंने मुझे अचरज में डाल दिया। ऐसे सूझ-बूझवाले लोग कभी लाचारी कैसे महसूस कर सकते हैं? यह सच है कि हम सब मजदूर थे और ईमानदारी से काम करने में ही हमारी मुक्ति और हमारी सभी आवश्यक जरूरतों की पूर्ति भरी है।

पुण्यदिवस : 30 जनवरी, 1948

सायंकाल 5 बजकर 10 मिनट! प्रार्थना के लिए आते समय, प्रार्थना-स्थल पर एक व्यक्ति ने पिस्तौल से गांधीजी को तीन गोलियां मारीं। उनका स्वर्गवास हो गया। गिरने से पहले उन्होंने नमस्कार करने के लिए हाथ उठाए थे और उनके मुंह से निकलाः "हे राम!!!..."

...तब उनकी घड़ी में 5:17 मिनट हुए थे।

*

इतिहास-2

संविधान सभा में नागरिकता का सवाल

० दुनू राय

जिन्हें यह भ्रम है कि वे ही पहले हैं कि
जो विभाजन और नागरिकता के सवाल पर
विचार कर रहे हैं और निर्णय कर रहे हैं, उन्हें
संविधान सभा की चर्चा के पन्ने पलटने
चाहिए। वे पन्ने पलटें तो शायद
समझ भी पलटे

आज से 70 साल पहले की उस बहस पर ध्यान देना जरूरी है जब संविधान बनाया जा रहा था। 10-12 अगस्त 1949 के बीच संविधान सभा में नागरिकता पर जोरदार बहस हुई। देश पर बंटवारे का अंधेरा साया छाया हुआ था, पाकिस्तान हर कहीं चर्चा में था। संविधान के निर्माताओं में एक बाबा साहेब आंबेडकर ने पांच तरह के नागरिकों की बात कहीः एक, जिनका जन्म और निवास भारत में है; दूसरे, जिनका जन्म तो नहीं लेकिन निवास भारत में है; तीसरे, जो भारत से पाकिस्तान चले गए; चौथे, जो पाकिस्तान से भारत आ गए, और पांचवें, जिनका या जिनके मां-बाप का जन्म भारत में हुआ, लेकिन वे रहते भारत के बाहर हैं।

आंबेडकर के विचारों से भिन्न विचार वाले भी थे। पहला सवाल था कि हिंदू और सिख को छोड़कर कौन है जो भारत लौटगा तो उसे नागरिक बनाने का 'परमिट' मिलेगा? आंबेडकर का कहना था कि पाकिस्तान से लौटे केवल उन लोगों को हम नागरिकता देंगे जिनके पास पुनर्वास या स्थायी वापसी का परमिट होगा। डॉ. देशमुख ने पूछा, "आपको कैसे मालूम होगा कि वह देशद्रोही नहीं है?" प्रो. शाह ने मांग रखी, "कानून ऐसा बने कि मीर जाफर जैसे लोग न आ पाएं।" ठाकुरदास भार्गव ने ऐसे लोगों से सबको सावधान किया जो "जमीन हड़पकर

असली मालिकों को आतंकित कर इस देश में बहुसंख्यक बनना चाहते हैं।" बनारसी प्रसाद झुनझुनवाला सहमत थे कि "असम में पूर्वी पाकिस्तान से घुसपैठिये अपनी आबादी बढ़ाने के कपटी मकसद के लिए आ रहे हैं।" रोहिणी कुमार चौधरी भी उनको बाहर करना चाहते थे "जो चुपके से घुसकर असम का शोषण करना चाहते हैं।"

प्रधानमंत्री नेहरू ने इस सबका मुखर जवाब देते हुए कहा कि तुष्टीकरण या कुछ लोगों को मनाने से नागरिकता का कुछ लेना-देना नहीं है और परमिट निष्पक्ष नियमों के मुताबिक दिया जा रहा है। आखिर में जब मतदान हुआ तब सभा ने आंबेडकर के पांच नागरिक प्रकारों का ही पक्ष लिया। इसमें केवल एक और धारा जोड़ दी गई– "जिन्होंने विदेशी नागरिकता स्वीकारी है, वे भारत के नागरिक नहीं बन सकते।"

संविधान सभा के सामने दूसरी समस्या थी, नागरिकता और रोजगार के बीच की कड़ी जोड़ने की। जसपतराय कपूर ने उन सरकारी कर्मचारियों का जिक्र किया था जो "पाकिस्तान जाकर लौट आए, क्योंकि पाकिस्तान में उनका जीना मुश्किल था।" अली बेग भी उन लोगों के बारे में चिंतित थे जो पाकिस्तान में नौकरी करते हुए भारत लौट आए हैं। सरदार भूपिंदर सिंह मान का तर्क था कि परमिट केवल भारत में व्यापार और धंधा करने से जुड़े सफर के लिए नहीं, बल्कि नागरिकता के हक के लिए भी होना चाहिए। ठाकुरदास भार्गव उन बंधुआ मजदूरों की तरफ ध्यान खींचना चाहते थे जो वापस आकर उद्योगपति व्यवसायी और उत्साही मजदूर बनकर देश की संपदा बनाना चाहते हैं। अल्लाडि कृष्णस्वामी अय्यर भी उनके हितैषी थे जो गोवा, फ्रांसीसी इलाकों और अन्य जगहों से भारत में आकर बसे हैं और व्यवसाय को बढ़ा रहे हैं। चौधरी उनको नागरिकता देने को तैयार थे जो सरकारी नौकर और व्यवसायी बनकर असम आए थे, परंतु उनका मत था कि हर प्रदेश संपन्न होना चाहता है, लेकिन दूसरों की कीमत पर नहीं। गोपाल स्वामी अय्यंगार इस बात से सहमत थे कि बड़ी संख्या में मुस्लिम पाकिस्तान से भारत आकर पंजीकृत हो जाएंगे और असम... और पश्चिम बंगाल ...की अर्थव्यवस्था चरमरा जाएगी। सिर्फ शाह ने ऐसे विदेशी पूंजीपतियों के बारे में चेतावनी दी थी जो केवल हमारी औद्योगिक और वित्तीय नीति का फायदा उठाते हैं। लेकिन जिनका देश से कोई प्यार नहीं है। अंत तक सभासद इसका निबटारा नहीं कर पाए कि किसे सुरक्षा दें– उन्हें, जो देश के लिए धन पैदा करते हैं या उन्हें, जो देश का धन चूस लेते हैं?

संविधान सभा में तीसरा मसला उनके बारे में था जिनका जन्म भारत में नहीं हुआ; जिनके मां-बाप, दादा-नाना भारतीय थे लेकिन जो पाकिस्तान से लौटकर

अब पाकिस्तान वापस नहीं जाना चाहते थे या जो दोहरी नागरिकता चाहते थे। वक्त कम था। कोई समझ नहीं बन पाई। संविधान सभा ने इस मुद्दों को आगे के लिए बढ़ा दिया– संसद बाद में इन विषयों पर कानून बनाएगी। इसी पृष्ठभूमि में 1955 में संसद ने नागरिकता कानून पारित कर दिया जिसमें नागरिकता जन्म, पितृत्व, पंजीकरण, देशीकरण या देश के फैलाव पर आधारित है। इन पांचों में जमीन बुनियादी है। 1949 में भारतीय कौन है सवाल का जवाब नहीं मिल पाया था। जब प्रो. सक्सेना ने डॉ. देशमुख से यही सवाल पूछा, तब देशमुख बोले, "मैंने तो सोचा था कि भारतीय बहुत आसानी से पहचाना जा सकता है। जमीन के साथ जोड़ देंगे तो उसकी पहचान आसान हो जाएगी।"

पांच बार संशोधित होने के बाद भी नागरिकता कानून इन सवालों का जवाब दे पाया क्या? एक सूत्र है जिसे बिलकुल ही छोड़ दिया गया है। वह है नागरिक और रोजगार के बीच की कड़ी। जो लोग भारत में जन्मे लेकिन भारत में कमाया सारा धन बटोर कर विदेश भाग गए, क्या उनको नागरिकता देना उचित होगा? 2014 से 2018 के बीच ऐसे 23,000 करोड़पति हैं जो भगोड़े बन गए और उनमें से केवल 36 ने ही देश को 40,000 करोड़ रुपयों का चूना लगा दिया। क्या नेहरू, ब्रजेश्वर प्रसाद और प्रो. शाह की बात सही निकली? दूसरी तरफ उन लगभग दो करोड़ लोगों के बारे में क्या सोचा जाए जो भारत में पैदा होते हुए भी विदेश में (ज्यादातर मुस्लिम देशों में) काम करते हुए, केवल 2019 के एक साल में ही भारत को 5,70,000 करोड़ रुपये भेजे? उन गैर-कानूनी 55 लाख इंसानों तथा 10 करोड़ प्रवासियों को कौन-सी नागरिकता की छाया मिलेगी, जो राष्ट्रीय संपदा को अपनी मेहनत से बढ़ाते हैं?

लोकतंत्र में राज्य और नागरिकों के बीच एक निर्णायक समझौता होता है जिसके तहत जनता, वोट के अलावा कर (टैक्स) देती है जिससे सरकार देश की व्यवस्था संभालती है। टैक्स वही दे पाएगा जो अपनी मेहनत से, अपने रोजगार या व्यवसाय से कमा पाएगा, बाजार से कुछ खरीद पाएगा– और जो नागरिकता के बल पर अपनी आजीविका की रक्षा कर सकेगा। जो समाज की संपन्नता में योगदान करते हैं, चाहे उनका काम कितना ही 'नीच' क्यों न माना जाए, क्या वे नागरिकता के हक और जिम्मेदारी के पात्र नहीं हैं? यदि नागरिकता कानून को बदलना ही है, तो मेहनत की बात इस बार टाली नहीं जा सकती।

लेखक वरिष्ठ समाजकर्मी व शोधकर्मी हैं

*

इतिहास-3

इतिहास के गलत विद्यार्थी

० राजमोहन गांधी

इतिहास तोतारटंत नहीं है; और न यह सत्ता की मदद से समाज को भरमाने वाला दस्तावेज है। यह मानवीय विकास को पूरा-का-पूरा या उसके किसी काल-खंड को समझने और पचाने की वैज्ञानिक पद्धति है। इसलिए इतिहास पढ़ना और समझना दोनों सीखना पड़ता है

फरवरी 1943 का काल था। भारत छोड़ो का आह्वान करने के कुछ महीनों बाद ही, जेल में कैद काट रहे गांधी ने 21 दिनों का उपवास घोषित किया, क्योंकि ब्रितानी सल्तनत भारत छोड़ो आंदोलन को दुनिया भर में बदनाम करने का जो अभियान छेड़े हुई थी, उसका मुद्देवार जवाब देने का गांधी के पास कोई उपाय नहीं था। और इसी उपवास के दौरान कैदी गांधी ने अपने एक मुलाकाती से मुस्लिम लीग की पाकिस्तान वाली मांग की सविस्तार चर्चा की। मुलाकाती थे चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, कांग्रेस के एकमात्र बड़े नेता जो तब जेल में नहीं थे। राजाजी ने भारत छोड़ो आंदोलन की खुली मुखालफत की थी जिस कारण उन्हें जेल में नहीं डाला गया था।

पुणे की अपनी इस बातचीत में गांधी और राजाजी, दोनों इस बारे में सहमत हुए कि यदि मुस्लिम लीग कांग्रेस के साथ मिलकर आजादी की लड़ाई लड़ती है तो आजादी के बाद अविभाजित भारत के उत्तर-पश्चिम व पूरब के उन सारे विवादास्पद जिलों में, जहां मुसलमान बहुमत में हैं, कांग्रेस जनमत संग्रह करवाना स्वीकार करेगी। अगर जनमत संग्रह का परिणाम विभाजन के पक्ष में आया तो सुरक्षा, व्यापार व संवाद-संचार की साझा व्यवस्था के साथ उसे लागू किया जाएगा। इसे ही बाद में सी.आर. फॉर्मूला कह कर प्रचारित किया गया।

पुणे की इस बातचीत के 19 महीनों के बाद, सितंबर 1944 में गांधी जिन्ना से मिले। अब तक गांधी जेल से रिहा किए जा चुके थे और जिन्ना के साथ सीधी बातचीत के लिए मुंबई में थे। यह वार्ता लगातार चली और 14 मुलाकातों में गांधी ने जिन्ना को सी.आर. फॉर्मूला से राजी करने की कोशिश की। वार्ता विफल रही। सी.आर.फॉर्मूला को खारिज करने के जिन्ना ने पांच कारण बताएः पहला कि यह पर्याप्त बड़ा नहीं है। इसमें पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब को भी शामिल होना चाहिए। दूसरा कि उन्हें इसमें जरूरी संप्रभुता भी दिखाई नहीं देती है। सुरक्षा, व्यापार व संवाद-संचार के क्षेत्र में जैसी साझा व्यवस्था की बात फॉर्मूले में रखी गई थी, जिन्ना को लगता था कि उससे इनके भावी पाकिस्तान की संप्रभुता पर आंच आती है। तीसरा कि इस फॉर्मूला के तहत कल्पना की गई थी कि मुसलमान बहुमत वाले इलाकों में जनमत संग्रह में पाकिस्तान चाहिए कि नहीं, इस पर वहां के सभी नागरिक अपना मत देंगे जबकि जिन्ना चाहते थे कि मत देने का अधिकार केवल मुसलमानों को होना चाहिए। चौथा कि गांधी जहां चाहते थे कि यह जनमत संग्रह आदि आजादी मिलने के बाद हो, वहीं जिन्ना चाहते थे कि यह सारा कुछ अंग्रेजों की देखरेख में हो जाए और फिर ही आजादी की घोषणा हो। और जिन्ना की अंतिम शिकायत यह थी कि गांधी मुसलमान बहुमत वाले इलाकों में जनमत संग्रह की बात तो स्वीकार करते हैं लेकिन यह स्वीकार नहीं करते हैं कि हिंदू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं।

तीन साल बाद, अगस्त 1947 में जिन्ना को उनका अपना पाकिस्तान मिला– उतना ही बड़ा मिला जितना बड़ा पाकिस्तान देने की पेशकश गांधी ने शुरू में ही की थी लेकिन अब जो मिला उसमें जिन्ना हिंदुस्तान के साथ किसी भी तरह की साझेदारी से आजाद थे।

गांधी ने जिन्ना के लिए एक और रास्ता बनाने का वाला सुझाव रखाः "हम ऐसा करते हैं कि किसी एक तीसरे की या अधिक की मध्यस्थता रखते हैं जो इस पूरी प्रक्रिया में हमारा मार्गदर्शन भी करे और जरूरत पड़ने पर हमारे बीच पंच भी बने।" जिन्ना इसके लिए भी तैयार नहीं हुए। तीन साल बाद, अगस्त 1947 में जिन्ना को उनका अपना पाकिस्तान मिला– उतना ही बड़ा मिला जितना बड़ा पाकिस्तान देने की पेशकश गांधी ने शुरू में ही की थी लेकिन अब जो मिला उसमें जिन्ना हिंदुस्तान के साथ किसी भी तरह की साझेदारी से आजाद थे।

उदास व निराश-से गांधी को विभाजन का यह निवाला गटकना तो पड़ा लेकिन न उन्होंने कभी, कहीं यह स्वीकार किया और न कांग्रेस के किसी प्रमुख नेता, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, राजगोपालाचारी, मौलाना आजाद या

राजेंद्र प्रसाद ने स्वीकार किया कि हिंदू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं। 1947 में जो हुआ वह किसी भी तरह दो राष्ट्रों की रचना नहीं थी कि एक हिंदुओं के लिए था और एक मुसलमानों के लिए। हुआ सिर्फ इतना था कि इस उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिम व पूरब के मुसलमान बहुल विवादास्पद इलाकों को भारत से अलग कर दिया गया। बाद में पाकिस्तान ने जरूर यह निर्णय किया कि वह इस्लामी राष्ट्र होगा। लेकिन भारत हमेशा सबका ही देश बना रहा– अपने संविधान की परिकल्पना में गहरा भरोसा रखने वाला, धर्म, जाति, लिंग आदि का कोई भेद न करते हुए अपने सभी नागरिकों को समान अधिकार देने वाला देश!

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने विभाजन के लिए नेहरू को जिम्मेवार ठहराया है। उस दुखद घटना-क्रम के लिए एकमात्र या अधिकांशतः नेहरू को जिम्मेवार ठहराने का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। हमें अब तो यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि यदि विभाजन नहीं हुआ होता तो आज के पाकिस्तान व बांग्लादेश के सारे ही नागरिक आज के हिंदुस्तान के किसी भी भाग में जाने-रहने को स्वतंत्र होते। भाजपा के केंद्रीय मंत्री जी. किशन रेड्डी जैसों को यह बात खास तौर पर याद रखनी चाहिए, जिन्हें 9 फरवरी 2020 को अचानक ही यह अहसास हुआ कि यदि भारतीय नागरिकता का प्रस्ताव दिया जाए तो आधा बांग्लादेश यहां उमड़ आएगा।

भारत हमेशा सबका ही देश बना रहा– अपने संविधान की परिकल्पना में गहरा भरोसा रखने वाला, धर्म, जाति, लिंग आदि का कोई भेद न करते हुए अपने सभी नागरिकों को समान अधिकार देने वाला देश!

मैं इस लेख में यह नहीं खोज रहा हूं कि विभाजन के लिए कौन जिम्मेवार था; और न मैं यहां इधर से उधर या उधर से इधर लोगों की आवाजाही का आकलन कर रहा हूं। मेरी कोशिश मात्र यह उजागर करने की है कि मार्च 1940 में भले मुस्लिम लीग ने दो राष्ट्रों के सिद्धांत को आगे बढ़ाया था, और हिंदू महासभा ने यही काम 1937 में किया था लेकिन देश-विभाजन में दो राष्ट्रों का सिद्धांत कभी मान्य नहीं किया गया। और यह इतिहास भी हमें हमेशा याद रखना चाहिए कि 1949 के आखिर में आकर हमने जिस संविधान को अंगीकार किया उसने तो इस सिद्धांत को जड़ से ही खारिज कर दिया।

यह बीमारी प्रायः सभी समाजों में देखने को मिलती है– एक-दूसरे के बारे में अज्ञान! जो हमसे अलग-से हैं उनके बारे में पूर्वाग्रह भी उतना ही गहरा होता है। लेकिन मनुष्य-सभ्यता का इतिहास यह भी बताता व सिखाता है कि समय के साथ-साथ हमें यह सच्चाई समझ में आने लगी है कि अंततः हम सब एक

ही हैं।

जब एक कोरियाई फिल्म अमरीका के ऑस्कर में विजयी होती है; जब यूरोप व उत्तर अमरीका की राजनीति में एशियाई मूल के लोग ताकतवर जगहों पर पहुंचते हैं; जब भारतीय-अमरीकी नागरिक न केवल अमरीकी कांग्रेस में अपनी मजबूत उपस्थिति बनाते हैं बल्कि यह आशा भी बनती है कि इसी तरह किसी दिन कोई भारतीय व्हाउट हाउस में पहुंच जाएगा तब समझ में आता है कि दो राष्ट्रों का सिद्धांत जैसी कोई अवधारणा बीते इतिहास की पौराणिक कल्पना जैसी है। बहुत पहले हम ऐसा सोचते थे कि दूसरी जनजातियां, धार्मिक जमातें, जातीय संगठन आदि-आदि हमसे कमतर हैं कि हमसे बेहतर हैं कि खतरनाक हैं कि आसानी से निशाने पर ली जा सकती हैं। लेकिन आज हम एक-दूसरे को ज्यादा बेहतर ढंग से जानते व मानते हैं।

दो राष्ट्रों के सिद्धांत को न केवल साफ-साफ रद्द कर देना है बल्कि संपूर्णतः रद्द कर देना है। यह बात कबूल कर लेना काफी नहीं है कि भारतीय नागरिकों के बीच में कोई ऐसा कानून होना ही नहीं चाहिए कि जो धर्म के आधार पर भेद करता हो। किसी खास समुदाय के लोगों को नागरिकता देने से इनकार करना न केवल हमारे संविधान का हनन करना है, समता के मानवीय सिद्धांत को तार-तार करना है बल्कि यह छुपा-छुपाया दो राष्ट्रों का सिद्धांत ही है। आज अप्रवासियों पर लागू किया जा रहा है, कल उन सब पर भी लागू किया जाएगा जिनके पुरखे कुछ सौ साल पहले तक भारतीय ही थे। और अंततः होगा यही कि पड़ोसियों के बीच तलवारें खिंच जाएंगी। इसलिए इस अवधारणा को किसी प्रकार का मदद या स्वीकृति नहीं मिलनी चाहिए– उनके नाम से भी नहीं जो कभी, कहीं इस कारण उभरी हिंसा के शिकार हुए थे!

लेखक सुप्रसिद्ध इतिहासकार और गांधी-परिवार के वरिष्ठ हैं

*

नागरिकता

हिमालय-सा दिमाग और क्षितिज-सा दिल

○ विनोबा

नागरिक कौन और नागरिक कैसा के आज के कोलाहल में कोई सुनेगा कि आज देश-दुनिया कैसे नागरिक की जरूरत है? और वैसा नागरिक कैसे बनेगा? देश-दुनिया नई बनानी हो तो नया बनाना होगा अपना मन और बड़ा बनाना पड़ेगा अपना दिल!

हमारे हृदय से, हम भारतीय हैं इससे छोटी ध्वनि न निकले, इसका हमें ध्यान रखना चाहिए। हम फलां जाति के हैं, फलां धर्म के, फलां पंथ के, फलां परिवार या फलां कुटुंब के हैं– ये सारे 'फलां-फलां' गौण हैं, मुख्य बात यही है कि हम भारतीय हैं लेकिन यह भी एक छोटा विचार हो गया है, क्योंकि जमाना जोरों से आगे बढ़ रहा है। विज्ञान के कारण राष्ट्र राष्ट्र के नजदीक आ रहे हैं और दिन-ब-दिन छोटा चिंतन बेकाम साबित होगा। जिनका दिमाग मध्ययुग में रहता हो और पुराने इतिहास में जिनका मन रमता हो, उनके दिमाग और उनके मन इस जमाने के लिए छोटे पड़ेंगे। हमें अंतर्राष्ट्रीय चिंतन करना होगा। वह भी चंद दिनों में नाकाफी पड़ेगा और फिर आंतरविश्व-चिंतन करना होगा। इसके लिए हमारा दिमाग जितना विशाल है उतना ही विशाल अपना दिल भी रखना होगा।

हमारी वृत्ति पूरी तरह 'वैश्वानर' की होनी चाहिए। ऋग्वेद के ऋषि ने दस हजार वर्ष पहले 'विश्वमानुष' शब्द का प्रयोग किया है। वैसा हमें बनना है, क्योंकि वह इस युग की मांग है और आत्मज्ञान का आश्वासन है। हम समझ लें कि विज्ञान और आत्मज्ञान, दोनों संकीर्णता पर समान रूप से प्रहार करते हैं। यह

विशाल दृष्टि हम अपना लें। फिर भले ही घर का काम करें कि गली की सफाई अथवा किसी राज्य का संचालन! हम यह भूमिका कायम रखेंगे तो ही संसार में टिक सकेंगे, अन्यथा हमें हार भी खानी पड़ेगी और मार भी खानी पड़ेगी।

समस्त संसार में आज एक आध्यात्मिक संकट पैदा हो गया है। मनुष्य का मन चक्कर में पड़ गया है, कुछ भयभीत हो गया है। उसे कुछ सूझ नहीं रहा है, उसकी बुद्धि काम नहीं दे रही है। आज वह शस्त्रों के हाथ में चला गया है, शस्त्र उसके हाथों से निकल गए हैं। हिंसा पर से उसकी श्रद्धा टूटी है, परंतु अहिंसा पर श्रद्धा अभी जम नहीं पाई है; क्योंकि वह भी एक श्रद्धा तो थी और वह निश्चित थी इसलिए उसका कुछ फल भी होता था। वह व्यवसायात्मक बुद्धि थी इसलिए कर्मयोग हो सकता था। अब तो वह भी नहीं रही। संसार में किसी की नहीं रही। फिर भी मानव शस्त्रास्त्र बढ़ाता ही जा रहा है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है।

'जय हिंद' में मुझे भय लगा। आज नहीं, कुछ दिन बाद आपकी समझ में आने लगेगा कि 'जय हिंद' में क्या खतरा है। यह 'जय जगत्' की भाषा मैंने कर्नाटक में शुरू की। वहां संयुक्त कर्नाटक का विवाद चलता था। संयुक्त हृदय के बिना हम जो कुछ भी करने जाएंगे संयुक्त, वह हमें वियुक्त ही करेगी, टुकड़े-टुकड़े करेगी।

बहुत वर्षों की बात है। मैं पवनार में था। आजाद हिंद सेना के कुछ लोग मुझसे मिलने आए और उन्होंने 'जय हिंद' कहा। तब मुझे क्या सूझा, कौन जाने लेकिन मैंने उत्तर में कहा— 'जय हिंद, जय दुनिया, जय हरि!' मतलब यह कि 'जय हिंद' में मुझे भय लगा। आज नहीं, कुछ दिन बाद आपकी समझ में आने लगेगा कि 'जय हिंद' में क्या खतरा है। यह 'जय जगत्' की भाषा मैंने कर्नाटक में शुरू की। वहां संयुक्त कर्नाटक का विवाद चलता था। संयुक्त हृदय के बिना हम जो कुछ भी करने जाएंगे संयुक्त, वह हमें वियुक्त ही करेगी, टुकड़े-टुकड़े करेगी।

हृदय विशाल करना हमारे हाथ में है। किसी को देखते ही ऐसा प्रतीत होना चाहिए मानो मेरी आत्मा ही आ रही है। तब हम एक साथ बैठेंगे और खाएंगे-पीएंगे। हमारे अंदर इतना प्रेम हो कि वादों और मतभेदों की लहरें समुद्र की तरंगों के समान ऊंची भले उठें, हमारे हृदय उनसे टूटें नहीं। समुद्र की लहरें चाहे कितनी ही ऊंची उठें, समुद्र के बाहर नहीं जा सकतीं। जिस प्रकार घर में प्रेम होता है, वैसा समाज में हो, वैसा ही विश्व में हो। मूल में प्रेम होगा, तो झगड़ों में भी मधुरता होगी। मेरी कसौटी यही है कि सिद्धांत के लिए झगड़ा हो रहा है, यह मैं तभी समझूंगा जब आप लड़ें और फिर भी एक-दूसरे को प्रेम से गले लगाएं।

एक भाई कहने लगे कि हमें किसी से द्वेष नहीं है, इस पर मेरा जवाब यह है कि क्या मां को बेटे से द्वेष नहीं है, इतना काफी होता है? मनुष्यता के लिए द्वेष का न होना काफी नहीं है, प्रत्यक्ष प्रेम होना चाहिए। हम सब एक-दूसरे को धारण करने वाले हैं, स्नेही, प्रेमी हैं। एक-दूसरे के दर्शन के बिना हमको नींद नहीं आनी चाहिए। रामायण में लिखा है कि जिस दिन राम लक्ष्मण को नहीं देखते थे, उन्हें नींद नहीं आती थी– 'न च तेन बिना निद्रा लभते पुरुषोत्तमः।' ऐसी प्रेम की अनुभूति हो। इस तरह का परस्पर के प्रति अन्यान्य अनुराग हो, तो फिर जितने भी वाद सामने आएंगे, वे तत्वबोध में मदद पहुंचाएंगे। अपने हृदयों में ऐसी अनुभूति जागृत कीजिए कि केवल भारत में ही नहीं, संपूर्ण पृथ्वीतल पर जितने भी मनुष्य हैं, वे सब मेरे रूप हैं और मैं उनका रूप हूं। एक बार यह सिद्ध कर लीजिए फिर जी-भर लड़ते रहिए।

एक प्रश्न हल हो जाए तो कौन कह सकता है कि दूसरे झगड़े पैदा ही नहीं होंगे? तो आज के प्रश्न को हल करने के लिए आज बैठें। जिस तरह एक दिन के बाद दूसरा दिन आता है, उसी प्रकार एक के बाद दूसरा, इस तरह प्रश्न-पर-प्रश्न उठते ही रहते हैं। कई लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आप जमीन की समस्या हल करने जा रहे हैं? मैं कहता हूं कि मैं क्या हल करने वाला हूं, शायद मेरी ही समस्या हल हो जाएगी! इसका क्या कभी अंत आने वाला है? ये तो चलते रहेंगे। परस्पर प्रेम बढ़ाइए, तो संयुक्त महाराष्ट्र या संयुक्त कर्नाटक से संयुक्त विश्व निर्माण हो जाएगा। नहीं तो सब वियुक्त हो जाएगा। रवींद्रनाथ कहा करते थे कि ये लोग 'वंदे मातरम्' तो कहते हैं, परंतु 'वंदे भ्रातरम' कभी नहीं कहते। भाई-भाई आपस में लड़ते रहेंगे, तो क्या मां को अच्छा लगेगा? इसलिए भाइयों को प्रेम से रहना चाहिए। सब भाई-भाई की तरह रहें, केवल इतना कहने से वेद को समाधान नहीं हुआ। इसलिए वेदों ने सुंदर शब्द लिख दिया– 'अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते सं भ्रातरो वावृधुः' भाई-भाई के बीच भी कोई बड़ा छोटा होता ही है, परंतु हम ऐसे भाई होंगे कि हमारे बीच न कोई छोटा होगा, न कोई बड़ा। ऋग्वेद के इस मंत्र में मुझे अत्यंत प्रेम का दर्शन हुआ।

अपने हृदयों में ऐसी अनुभूति जागृत कीजिए कि केवल भारत में ही नहीं, संपूर्ण पृथ्वीतल पर जितने भी मनुष्य हैं, वे सब मेरे रूप हैं और मैं उनका रूप हूं। एक बार यह सिद्ध कर लीजिए फिर जी-भर लड़ते रहिए।

ऋषियों का यह लक्षण ही होता है कि वे किसी भी विचार को उसकी संपूर्णता के साथ और स्वतंत्र रूप से ग्रहण करते हैं। उन्होंने संसार को धर्म

अर्थात् संसार को धारण करने वाले तत्वों का दर्शन कराया। आज हम इस तरह धर्म नहीं बना सकते। हम तो सिर्फ यह प्रयास करते हैं कि क्या सारे संसार पर लागू होने वाली कोई नीति हो सकती है? अलग-अलग वाद उत्पन्न हो रहे हैं। साक्षात् धर्म पर विचार नहीं किया जा रहा परंतु मनुष्य इस चिंता में जरूर है कि विश्व धर्म को वह प्रत्यक्ष कर सके। संपूर्ण मानवता एक है, यह तत्व मान्य होने पर भी विश्वात्मकता का जो व्यापक अनुभव होना चाहिए, वह अभी हमें नहीं हुआ है। आज संसार में इसी बात पर चिंतन चल रहा है कि इस पर अमल कैसे किया जाए। आदमी अभी इसे टटोलने की अवस्था में है।

विचारों में आप अगर केवल राष्ट्रवादी बने रहेंगे और 'महाराष्ट्रवादी' अर्थात् विश्ववादी नहीं बनेंगे, तो आप जिंदा नहीं रह सकेंगे। परमात्मा ने आपके ऊपर यह जिम्मेदारी डाल दी है कि राष्ट्रवाद की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और व्यापक 'महाराष्ट्रवाद' का आप रक्षण करें।

जिस दिन हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराया गया, उस दिन पुराना पिछड़ा हुआ मन चला गया। वह अब काम नहीं दे सकता। अब हम पर विश्वव्यापक चिंतन करने की जिम्मेदारी आ गई है, परंतु मन अभी तैयार नहीं हुआ है। इस तरह आज हम बीच की अवस्था में हैं।

भारत पर परमेश्वर की बड़ी कृपा है। एक कृपा तो यह है कि भारत सिर पटक कर मर जाए तो भी आज वह शस्त्र-शक्ति में बलवान नहीं हो सकता। ईश्वर ने हमें इस अवस्था में रख दिया है कि देश में जो थोड़ी-सी जमीन और अन्य साधन हैं, उनके आधार पर और दूसरे देशों को न लूटते हुए हम रहें, लूटने की गुंजाइश ही नहीं है। अमरीका और रूस की बराबरी करना भारत के लिए असंभव है। परमात्मा ने हमारे लिए यह एक बड़ी वैचारिक अनुकूलता पैदा कर दी है। दूसरी चीज, भारत की वैश्वानर संस्कृति है अर्थात् संसार में जितने भी भिन्न-भिन्न मानववंश हैं, उनका सबका यहां मिश्रण है अर्थात् भारत छोटे रूप में विश्व है। यहां की राष्ट्रीयता को आप अंतर्राष्ट्रीयता का रूप देंगे, तभी आप जिंदा रह सकेंगे। यही परमात्मा की योजना है। विचारों में आप अगर केवल राष्ट्रवादी बने रहेंगे और 'महाराष्ट्रवादी' अर्थात् विश्ववादी नहीं बनेंगे, तो आप जिंदा नहीं रह सकेंगे। परमात्मा ने आपके ऊपर यह जिम्मेदारी डाल दी है कि राष्ट्रवाद की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ और व्यापक 'महाराष्ट्रवाद' का आप रक्षण करें।

आज मानव-धर्म की स्थापना के लिए सारी दुनिया के विचारकों की मदद मिल सकती है, हर नागरिक मानव-धर्म की स्थापना में मदद दे सकता

है। वह सारा विज्ञान के कारण हुआ है। उसने इतनी खोजें की हैं कि मनुष्य के हाथ में बड़ी ताकत आ गई है। उस ताकत से मानव धर्म की स्थापना हो सकती है या सारा मानव समाज खत्म हो सकता है। विज्ञान ने यह समस्या खड़ी कर दी है कि चाहें तो मानव-धर्म की स्थापना के लिए राजी हो जाएं या खतम हो जाएं। ऐसी स्थिति में मानव, मानव-धर्म की स्थापना ही करेगा यानी मानव-धर्म की स्थापना इस जमाने में हो सकती है। हम जब-जब इस पर सोचते हैं, तो हमें बड़ा उत्साह मिलता है।

भारतीय दर्शन दोहरा विचार है। एक, सर्व में मैं हूं; दो, मुझ में सर्व है। जो काम मेरा अपना काम माना जाएगा, जैसे मेरा खाना मेरा सोना आदि, वह करते हुए भी मैं समाज के लिए कर रहा हूं, ऐसा समझना। मेरे व्यक्तिगत कार्य में भी सारे समाज का अनुसंधान हो और सारे समाज की सेवा में मेरा लोप हो, सर्वोदय का ऐसा दोहरा विचार है।

स्वार्थ का छोटा विचार मिट गया, व्यापक विचार आया तो सबके स्वार्थ की बात आती है। गांव में चेचक फैलने पर कोई उससे अलग नहीं रह सकता। छूत सबको लगती है। कोई एक मूर्ख बीड़ी पीकर किसी घर पर फेंक दे तो सारे गांव में आग लग जाती है। उसमें किसका कर्म था और फल किसे मिला! एक लड़के का बुरा कर्म था, फल मिला सारे गांव को। एक मनुष्य ज्ञानी बना तो उतने अंश में सारा समूह ज्ञानवान बनता है, ऊंचा उठता है। इसलिए व्यक्ति और समाज की भिन्न-भिन्न कल्पना गलत है। व्यक्तिगत कार्य सामाजिक दृष्टि से होना चाहिए और सामाजिक कार्य में प्रत्येक व्यक्ति के विकास का अवसर रहना चाहिए। यही राष्ट्र और विश्व के बारे में भी होना चाहिए। यही 'जय जगत्' का विचार है।

चार बातें ध्यान रखने योग्य हैंः आज का नारा जय जगत, हमेशा का नारा जय जगत, हमारा नारा जय जगत, और सबका नारा जय जगत। आज का, कल का और परसों का भी वही नारा है। इसी से उद्धार होगा।

अब बच्चा-बच्चा 'जय जगत' बोल रहा है। अगर मंत्र का कोई अर्थ है, तो वह बड़ी भारी चीज है। तोता भी राम-राम रटता है और भक्त भी। जब भक्त रामनाम जपता है तो कोई तोता उसके पीछे हो जाता है। अकेले किसी तोते को जंगल में रामनाम पढ़ते नहीं सुना गया।

दुनिया में विचार वेग से आगे बढ़ रहा है। धीरे-धीरे देशों की सरहदें भी टूटने वाली हैं। सारा विश्व सम्मिलित परिवार बने, ऐसी भावना बढ़ रही है, तीव्र हो रही है। विशाल भावना बनती है, तो हमारे जीवन पर भी उसका परिणाम

होता है। यदि दुनिया के सब बच्चे इकट्ठे हो जाएं और मिलकर 'जय जगत' बोलें, तो कोई बच्चा नहीं कहेगा कि हमारे देश की या हमारी कौम की जय हो। यह तो बड़े लोगों की अक्ल है। बच्चे परमेश्वर के समान होते हैं। ईसा मसीह ने तो कहा था कि बच्चों के मुंह से भगवान बोलते हैं। यहां भी यही बात है। बच्चों के मुंह से जो बात निकलती है वह दुनिया में जरूर सफल होने वाली है। जब बच्चे 'जय जगत' कहते हैं तो उसका सौंदर्य और भी निखर उठता है। 'जय जगत' बहुत शुभ वचन मालूम होता है। जय जगत का समाज बड़े लोगों को बनाना होगा लेकिन उसका आरंभ बच्चों से होगा।

आज दुनिया में सब भयभीत हैं। रूस-अमरीका, पाकिस्तान-हिंदुस्तान सब एक-दूसरे से डरते हैं, एक-दूसरे को राक्षस समझते हैं। लेकिन सोचा है कि ये लोग कौन हैं? साधारण मनुष्य! बाल-बच्चे वाले, घर में एक-दूसरे से प्यार करने वाले। फोटो लेकर देखिए कि हिंदुस्तान की मां, पाकिस्तान की मां, अमरीका की मां और रूस की मां अपने बच्चे को किस तरह प्यार करती है। चारों चित्र आंखों के सामने रखें तो उनमें कोई फर्क नहीं दिखाई देगा। लेकिन ये एक-दूसरे से डरते हैं, भय से बड़े-बड़े शस्त्र बनाते हैं।

चार बातें ध्यान रखने योग्य हैं: आज का नारा जय जगत, हमेशा का नारा जय जगत, हमारा नारा जय जगत, और सबका नारा जय जगत। आज का, कल का और परसों का भी वही नारा है। इसी से उद्धार होगा। नहीं तो अनेक कारणों से फूट पड़ेगी और घर-भेद, जाति-भेद, पंथ-भेद, देश-भेद, भाषा-भेद जैसे टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे। समाज की गाड़ी यहीं अड़ी हुई है।

व्यक्ति अगर त्याग करे, तो समाज उसका गौरव करता है लेकिन 'दूसरी जाति की चिंता कीजिए' कहते ही समाज नाक-भौं सिकोड़ने लगता है। अगर हिंदू कहे कि मुसलमानों का ध्यान रखिए, तो यह मुसलिम परस्ती मानी जाती है। जातियां इस तरह स्वार्थ से चिपकी हुई हैं।

हमें सभी की फिक्र होनी चाहिए। अगर हम अपनी ही चिंता करें तो 'जय जगत' नहीं होगा। इसी तरह अपनी-अपनी जाति की चिंता करें तो भी न होगा। वह भी जातीय स्वार्थ ही माना जाएगा। यह स्वार्थ किसी का भी किसी स्तर पर भी हो सकता है। साधारण किसान-नागरिक की तरह ही राष्ट्रीय नेता भी राग, द्वेष और मत्सर से भरे रहते हैं। इसलिए जय जगत हमारा यह नारा, सबका नारा, आज का नारा और कल का भी नारा है– ऐसा विचार ध्यान में आते ही प्रगति होगी, विकास होगा।

*

आज :

देश के तहखानों में

० रवींद्र रुक्मिणी पंढरीनाथ

एक बार फिर दिल्ली में दिल टूटे हैं;
लोग मरे हैं; घर जले हैं– देश की किस्मत
पूरी है!...लेकिन क्या यह पहली बार है?

राजधानी दिल्ली बहुत दूर है मुझसे, या मैं दिल्ली से। मैं यहां सेवाग्राम में हूं - बापू कुटी के पीछे बसे मेरे नीरव घर में। सेवाग्राम कभी इस देश की जनधानी हुआ करती थी– राजधानी दिल्ली से ज्यादा महत्वपूर्ण! देश का वर्तमान और भविष्य यहीं बनता था। यहां की मिट्टी में आज भी गांधीजी के हाथों की खुशबू है– चरखा चलाने वाले, कुष्ठ रोगी परचुरे शास्त्री के बहते घाव धोने वाले हाथों की! उन हाथों का स्पर्श अभी भी यहां के कण-कण में समाया है। मेरे घर में टीवी नहीं है। सोशल मीडिया पर पोस्ट पढ़ने से भी कतराता हूं। लेकिन दिल्ली का आक्रमण सब कुछ तहस-नहस कर देता है। देर रात अचानक आश्रम से फोन आता है, "भाई, इतनी भयानक गंध कहां से आ रही है?"

मैं कहता हूं, "गांव के बाहर श्मशान में कोई कलेवर जलता होगा। सो जाओ, चिंता मत करो।" लेकिन आज श्मशान में कोई शव तो था नहीं! घिनौनी गंध कम नहीं होती। निःशब्द विस्फोट होते रहते हैं। जलते घर हैं, छोटे बच्चे, गर्भवती महिलाएं, युवा और बूढ़े, सब खून से नहाते हैं!

जनवरी 1993। मुंबई। मेरी बेटी दस साल की है। हम लोकल ट्रेन से घर जा रहे हैं। ट्रेन में लोग हैं, लेकिन कोई आवाज नहीं। जैसे किसी निर्वात शून्य में से हम गुजर रहे हैं। ठाणे स्टेशन आता है। लगता है हम इंसानों की बस्ती में लौटे हैं। हम अगले स्टेशन कलवा उतर कर अपने घर पहुंचते हैं। उसके बाद

कई दिनों तक मुंबई आग की लपटों में झुलसती रहती है। लेकिन ठाणे से आगे सब कुछ ठीकठाक है। हम सुरक्षित हैं...? हमारे घर पर हमला नहीं हुआ, किसी को किसी ने जलाया नहीं। कोई चीख नहीं। लेकिन कई दिनों तक लोकल ट्रेन में सभी सहमे-सहमे-से रहते हैं। ...इन दिनों बाबा आमटे मुंबई आए हुए हैं। हम उनसे मिलने जाते हैं। वैसे तो बाबा के चारों तरफ हमेशा पत्रकारों-प्रशंसकों की भीड़ हुआ करती थी लेकिन इस बार कोई जमघट नहीं थी। बाबा कहते हैं, "मैंने दंगों के खिलाफ जो पर्चा निकाला, उसी का यह नतीजा है... अब हालात ठीक होने पर 'भारत जोड़ो अभियान' फिर से छेड़ना होगा।"

कितने मासूम होते हैं बच्चे... और कितना यातनामय होता है उनका हम पर और दुनिया की अच्छाई पर से भरोसा टूटना...

बड़ी होने पर मेरी बेटी ने उन दिनों के बारे में लिखा, "वह मेरे मोहभंग की शुरुआत थी। तब तक मैं सोचती थी कि मेरे माता-पिता, नर्मदा बचाओ आंदोलन के कार्यकर्ता और सभी प्रगतिशील कार्यकर्ता ...तो कितनी बड़ी फौज है! इनके होते हुए मुंबई में कभी दंगे नहीं हो सकते...!" कितने मासूम होते हैं बच्चे... और कितना यातनामय होता है उनका हम पर और दुनिया की अच्छाई पर से भरोसा टूटना...

...आज भी जब मैं माहिम स्टेशन जाता हूं, मेरे दिल की धड़कन थम-सी जाती है। माहिम स्टेशन पर मुंबई ट्रेन विस्फोट में मारे गए मुसाफिरों की याद में एक छोटा स्मारक बना है। जिस लोकल ट्रेन में विस्फोट हुआ, वह मेरी रोज की ट्रेन हुआ करती थी। मेरा रोज का कम्पार्टमेंट भी वही था। 'उस' दिन जब मैं सांताक्रूज पहुंचा, यकायक इतनी थकावट महसूस हुई कि मैंने सीढ़ियां चढ़ना-उतरना टाल दिया। ...अन्यथा उस सूची में मेरा भी नाम होता!

नवंबर 1984। खालिस्तान आंदोलन तब पूरे जोरों पर था। उसका साहसपूर्वक विरोध करने वाले एक कार्यकर्ता मुंबई आए थे। नुक्कड़ नाटक के माध्यम से आतंकवाद के खिलाफ कैसा अभियान चलाया, उनसे यह दास्तां सुनते-सुनते हम भाव-विभोर हो गए थे। लेकिन तभी अचानक इंदिराजी की हत्या की खबर आई। हमने उन्हें जल्दी घर लौटने की सलाह दी। उनके बाल काटे, ट्रेन में बेंच के नीचे घुसाया, वैसे ही वे तीन-चार दिनों बाद अपने घर पहुंचे! जब तक उन का संदेशा नहीं आया, हम हलकान रहे। मुझे याद है, उस वक्त भी दिल्ली में, देश में जो कुछ हुआ, उसके बारे में समाचारपत्रों ने कैसी खामोशी बना रखी थी!

1947: पाकिस्तान में हिंदू और सिख, दिल्ली में मुसलमान, **1984:** दिल्ली में सिख, फिर कश्मीर में कश्मीरी पंडित, उसके बाद कश्मीर में कश्मीरी मुसलमान

और सैन्यकर्मी.... इसी बीच मुरादाबाद, मुजफ्फरनगर, **2002:** गुजरात, और अब **2020** की शुरुआत में फिर दिल्ली! प्रतिशोध...क्रोध का यह चक्र थमता क्यों नहीं? जानते तो सभी हैं कि इससे कुछ हासिल नहीं होता!

सुना है, दिल्ली में कोई अंकित शर्मा मरा है, कोई मुबारक हुसैन। अतीत में भी ऐसा हुआ; अब भी हो रहा है। किसी का कलेजा कांपा या हाथ थम गया, ऐसा भी हुआ क्या? हो सकता है कि इससे पहले कोई 'सीएम' कानों पर मफलर इतना कसकर बांधता न हो कि कोई चीख सुनाई न दे! आंखों के सामने दंगे होते देख, हाथ बांध कर खड़ा रहने या हथियारबंद गुंडों को अपने वाहन द्वारा लाने-ले जाने का प्रशिक्षण तब पुलिस को दिया न जाता हो; हो सकता है कि दंगे को काबू करने में असमर्थ पुलिसकर्मियों पर कार्रवाई करने से उनके मनोबल पर विपरीत असर होगा ऐसा न्यायालय को सुनाने की 'हिम्मत' शायद पहले के सॉलिसिटर जनरल को होती न हो; जो सुनता व देखता भी हो। ऐसे न्यायाधीश का तबादला घंटों में करने की कार्यक्षमता वाला प्रशासन पहले न रहा हो लेकिन रास्ते पर उतर कर दंगे रोकने की हिम्मत रखने वाले कुछ नेता, कम-से-कम कांग्रेस में, उस जमाने में हुआ तो करते थे। समाचार माध्यम तब भी डरपोक और सरकार-शरण थे, लेकिन लोग आग में तेल डालने का काम तब नहीं करते थे।

आज पूरा देश गोला-बारूद का एक भंडार बन गया है और यह गारंटी देना मुश्किल है कि यह भंडार चिनगारी से दूर रखा जाएगा। ये भू-सुरंगें कैसे और कब फटेंगी, कोई नहीं बता सकता। आज धर्म के नाम पर शिकारों को हांका जा रहा है, कल किसी जाति, प्रदेश, या स्थानीय/बाहरी जैसे नाम से हांका जाएगा...

वास्तव में, अब डर किसी बाहर वाले से नहीं, अपनों से है। धर्म रक्षा के लिए जो कुछ भी किया जाए, वाजिब है। 'हिंसा से दुखी होता है वह हिंदू' और 'इस्लाम शांति का दूसरा नाम है' जैसी विनोबाजी की व्याख्याएं अब किसे याद हैं और कौन सुनता है?

दिल्ली की मिट्टी से गांधीजी के खून की गंध और 'गोली मारो...' की ध्वनि आती है... अब तक के दंगों में मारे गए लाखों शव हमारे देश के तहखानों में सड़ रहे हैं। उनकी बदबू हर जगह आ रही है— इतनी दूर गांधीजी के सेवाग्राम तक! मेरी नींद उड़ गई है। क्या आप पर, अभी भी नींद की गोलियों का असर है?

*

"आओ, बा से मिलने चलें!"

○मीरा बहन

बापू के सिपाहियों की कमी नहीं थी, शिष्य भी बहुत सारे थे– लेकिन मीरा बहन जैसा दूसरा कोई नहीं था। मीरा बहन सिपाही भी थीं, शिष्य भी और आकंठ डूबी भक्त भी!... इसलिए वे अकेली, अनोखी और अपूर्व थीं! इंग्लैंड के सैन्य अधिकारी मिस स्लेड के भारत के गांधी तक पहुंचने की सारी कथा मीरा बहन की आत्मकथा से–

मेरे खयाल से अक्तूबर के महीने में मैं अंतिम रूप से यूरोप लौटी। नेपल्स में एक-दो दिन ही ठहरी और फिर सीधे पेरिस। मैं रोमां रोलां की वह पुस्तक प्राप्त करने को उतावली हो रही थी, जिसके प्रकाशन का समय होने आया था। दुकान की खिड़की सारी-की-सारी एक छोटी-सी नारंगी रंग की पुस्तक से भरी थी। उसका नाम था– महात्मा गांधी! बड़े-बड़े काले अक्षरों में छपा था। मैं एक प्रति खरीद लाई और तभी से पढ़ना शुरू कर दिया। एक बार शुरू किया तो छोड़ने का नाम ही न लिया। शाम तक उसे पूरा कर लिया।

और फिर मुझे पता चला कि 'वह' क्या था, जो मेरे पास आता प्रतीत हो रहा था। मुझे साफ लगा कि मुझे महात्मा गांधी के पास जाना है, जो अत्याचार से पीड़ित भारत की भयरहित सत्य और अहिंसा द्वारा सेवा कर रहे थे। भले ही वह भारत केंद्रित था लेकिन मुझे लगा कि वह सारी मानव-जाति के लिए था। मैंने पक्ष-विपक्ष कुछ नहीं सोचा, न यह तर्क करने की कोशिश ही की कि मेरा प्रार्थनाओं का परिणाम यह क्यों निकला। भीतर की पुकार शुद्ध और निश्चित थी।

मैं लंदन लौट आई और पी.एंड.ओ. के जहाज में अपनी जगह मैंने सुरक्षित करा ली। माता-पिता को बता दिया। उन्होंने मुझसे बहस नहीं की, मेरी अदम्य प्रेरणा के महत्त्व को समझ लिया। फिर मुझे ही लगा कि मैं बहुत जल्दबाजी कर रही हूं। गांधीजी मुझे स्वीकार करें इसकी कठोर साधना मुझे करनी होगी। मैं फिर

पी.एंड.ओ. के ऑफिस पहुंची अपना टिकट बदलवा कर, बारह महीने बाद का करा लाई।

अब सोचना यह था कि अपनी वर्ष भर की तालीम किस तरह शुरू करूं? पहली बात ध्यान में आई कि मुझे कातना और बुनना सीख लेना चाहिए। कताई पर इतना जोर गांधीजी देते थे। कताई गांव के हर घर को स्पर्श कर सकती थी। बुनाई तो थोड़े-से ही लोगों का काम था, कताई सब स्त्रियों और लड़कियों का काम था— क्योंकि एक करघे को सूत मुहैया करने के लिए कई चरखों की जरूरत होती है। इसके द्वारा उनके और करोड़ों मूक जनों के बीच सहानुभूति का संबंध स्थापित होता था।

कातना सीखना मेरे कार्यक्रम का सर्वोपरि अंग बन तो गया लेकिन पश्चिम में तो कोई रूई कातता नहीं था। कताई की तालीम लेनी पड़ी। मैं बड़ी भाग्यशाली थी क्योंकि बेडफोर्ड गार्डस के ठीक छोर पर 'केनसिंग्टन वीवर्स' नामक केंद्र था, जिसका संचालन डोरोथी विल्किन्सन और उनकी बहनें करती थीं। ये लोग हमारे परिवार की पुरानी मित्र थीं। मैंने एक चरखा और ऊन धुनने के ब्रश खरीदे और घर पर ऊन कातना शुरू कर दिया; और बुनाई के लिए मैं इस स्कूल में जाने लगी। फिर मैंने मांसाहार और मादक पदार्थ छोड़े। हिंदुस्तान की भाषा सीखनी शुरू की। मुझे पालथी मार कर जमीन पर बैठने और वहीं सोने का अभ्यास करना था। और भारत के बारे में जो कुछ पढ़ा जा सके, वह सब पढ़ना था। आहार-परिवर्तन के मामले में मैंने धीरे-धीरे चलने का निश्चय किया। ऐसे समय में मैं अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लेने की मूर्खता नहीं करना चाहती थी। पहले मैंने शराब छोड़ी, फिर धीरे-धीरे विशुद्ध शाकाहार तक पहुंची। भाषा की समस्या बड़ी कठिन थी। भाषा मुझे कौन सिखाए और वह भाषा कौन-सी हो? फ्रेंच सीखने की तरह इस मामले में भी पिताजी ने मेरी सहायता की। उन्होंने भारत मंत्री के कार्यालय के स्थायी अंडर सेक्रेटरी को, जो उनके मित्र थे, लिखा और उनकी सलाह मांगी। हमें बताया गया कि मुझे उर्दू भाषा सीखनी चाहिए और लंदन में एक भारतीय विद्यार्थी की अध्यापक के रूप में सिफारिश भी की। बस, मैंने उर्दू का एक बढ़िया व्याकरण 'मुशी' खरीद लिया। एक भारतीय विद्यार्थी आकर मुझे पढ़ा जाया करे, ऐसी व्यवस्था बनी। मुझे उर्दू के पाठ बहुत कठिन लगे और मेरी प्रगति बहुत मंद रही। फ्रेंच भाषा भी मुझे कठिन ही लगी थी। भाषाएं सीखने की प्रतिभा स्वभावतः मुझमें नहीं थी। लेकिन उर्दू ने तो मेरे रोंगटे खड़े कर दिए। फर्श पर बैठने और सोने का क्रम अच्छा चला। अलबत्ता मां को मेरा आरामदेह पलंग छोड़ना बहुत पीड़ा दे गया। रही बात पढ़ने की, सो मैं तुरंत महात्मा गांधी के साप्ताहिक 'यंग इंडिया' की ग्राहक बन गई; और ब्रिटिश म्यूजियम के पास ऐसी दुकान मैंने ढूंढ़ ली, जहां से मुझे कुछ पुस्तकें मिलने लगीं।

मेरी तालीम चल रही थी कि अखबारों में समाचार आया कि हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए महात्मा गांधी ने इक्कीस दिन का उपवास शुरू कर दिया है और इसमें शंका है कि वे इस अग्नि-परीक्षा से पार हो सकेंगे। मुझे बड़ी पीड़ा हुई। मैं चुपचाप प्रार्थना करने के सिवा और कुछ नहीं कर सकती थी। दिन-दिन समाचार अधिकाधिक भयभीत करने वाले आ रहे थे। ऐसा लगता था मानो ये इक्कीस दिन कभी खतम ही नहीं होंगे। मैंने अपनी पढ़ाई तो जारी रखी लेकिन मन उधर ही लगा रहा। फिर समाचार आया कि उपवास पूरा हुआ और गांधीजी सब तरह से सकुशल हैं, तो मेरी कृतज्ञता और प्रसन्नता का पार नहीं रहा। मुझे लगा कि गांधीजी को पत्र लिखना चाहिए और अपनी कृतज्ञता प्रकट करने वाली कोई भेंट उन्हें भेजनी चाहिए। लेकिन भेजूं क्या? संगीत-सम्मेलनों में मेरा पैसा खर्च हो चुका था, मेरा पियानो बिक चुका था। बस, एक छोटी-सी हीरे की पिन थी, जो मेरे नाना ने मुझे इक्कीसवें जन्म-दिवस पर भेंट की थी। मैंने निर्णय किया कि इसे बेचकर, इसकी कीमत उन्हें भेज देती हूं। मैंने एक पत्र लिखा और 20 पौंड का चेक उसके साथ जोड़ा, उपवास की सफल समाप्ति के लिए ईश्वर को धन्यवाद दिया और बताया कि कैसे मैंने रोमां रोलां की पुस्तक पढ़ी, कैसे मैंने पहले तुरंत भारत आने की इच्छा की और कैसे यह समझकर कि पहले मुझे एक वर्ष की तालीम लेनी चाहिए, अब मैं तालीम ले रही हूं। मैंने उत्तर की बहुत आशा नहीं रखी थी। बस, सोच रही थी कि गांधीजी के हस्ताक्षरों वाला चेक बैंक के जरिए वापस आएगा। कुछ समय बाद, एक दिन जब मैं बेडफोर्ड गार्डेंस में टेलीफोन की मेज पर बैठ थी, किसी ने मेरे सामने एक तोड़ा-मरोड़ा-सा पोस्टकार्ड रख दिया। अक्षर परिचित नहीं थे और साफ पढ़े भी नहीं जाते थे। पलट कर हस्ताक्षर देखे तो लिखा था— एम.के. गांधी। मैंने झपट कर उसे पूज्य भाव से उठा लिया और एक सांस में सारा पढ़ गई। लिखा थाः

पहली बात ध्यान में आई कि मुझे कातना और बुनना सीख लेना चाहिए। कताई पर इतना जोर गांधीजी देते थे। कताई गांव के हर घर को स्पर्श कर सकती थी।

प्रिय मित्र,

जल्दी उत्तर न देने के लिए आपसे क्षमा चाहता हूं। मैं लगातार सफर में रहा हूं। आपके भेजे हुए 20 पौंड के लिए धन्यवाद! इस रकम का चरखे के प्रचार में उपयोग किया जाएगा।

मुझे सचमुच खुशी है कि अपनी पहली उमंग को कार्य का रूप देने के बजाय आपने यहां के जीवन के लिए तैयारी करने और कुछ समय रुक जाने का निश्चय किया। यदि वर्ष भर की प्रतीक्षा के बाद भी आपको यहां आने की

प्रेरणा मिले, तो शायद आपका भारत आना उचित होगा।

रेल से *आपका*

31.12.24 *मो.क. गांधी*

जब तालीम का आधा समय निकल गया तब मैंने गांधीजी को फिर पत्र लिखाः क्या मैं सचमुच साबरमती आश्रम में आ जाऊं? मैंने अपने काते ऊनी सूत के कुछ नमूने भी भेजे। अगस्त में उसका उत्तर आया और उसने मुझे हर तरह से शांत कर दियाः

148, रूसा रोड,
कलकत्ता
24 जुलाई 1925

प्रिय मित्र,

आपका पत्र पाकर मुझे खुशी हुई। उसने मुझ पर गहरा असर किया है। आपके भेजे हुए ऊन के नमूने बहुत सुंदर हैं।

आप जब भी आना चाहें, आपका स्वागत है। अगर आपको लाने वाले जहाज की मुझे सूचना मिल जाए, तो कोई आपको जहाज पर लेने आ जाएगा और साबरमती लाने वाली रेलगाड़ी तक आपको पहुंचा देगा। इतना याद रखिए कि आश्रम का जीवन फूलों की सेज नहीं है, वह कठोर है। प्रत्येक आश्रमवासी को शरीर-श्रम करना पड़ता है। इस देश की जलवायु भी काफी मुश्किल पैदा करती है। ये बातें मैं आपको डराने के लिए नहीं, चेताने के लिए लिख रहा हूं।

आपका
मो. क. गांधी

किसी ने मेरे सामने एक तोड़ा-मरोड़ा-सा पोस्टकार्ड रख दिया। अक्षर परिचित नहीं थे और साफ पढ़े भी नहीं जाते थे। पलट कर हस्ताक्षर देखे तो लिखा था— एम.के. गांधी।

ग्रीष्म ऋतु मैंने स्विट्जरलैंड में बिताई। स्वास्थ्य बनाने की दृष्टि से मैं किसानों के साथ, उनके खेतों में काम भी करती थी, क्योंकि मैंने समझ लिया था कि मेरा अगला पड़ाव कठिन परिश्रम वाला होगा।

मेरा जहाज 25 अक्तूबर को मार्सेल से चलने वाला था। इसलिए ग्रीष्म ऋतु के अंत में मैं अपनी तैयारियों के लिए लंदन लौट आई। खादी के लिए मैं पहले ही दिल्ली लिख चुकी थी। वह आ गई थी। मैंने उसके सादे, सफेद फ्रॉक बनवा लिये। समुद्र-यात्रा के लिए मैंने कम-से-कम गरम कपड़े रखे। दूसरी सब चीजों के साथ-साथ मैंने बाकी के अपने कपड़े भी बांट दिए। सिर्फ कुछ पुस्तकें और कुछ आभूषण रख लिये। मेरे पास लगभग चार सौ सचमुच अच्छी पुस्तकों

का संग्रह था। उसमें से छांट कर दो पेटियां मैंने भर लीं। आभूषणों को– वे जैसे भी थे– मैंने अपने ध्येय के लिए अर्पण कर देने का निश्चय कर लिया था। मैं माता-पिता की सबसे छोटी बेटी थी और सबको मालूम था कि फैशन और सामाजिक प्रवृत्तियों में मेरी दिलचस्पी नहीं है। इसलिए बहुत आभूषण मुझे मिले ही नहीं थे। यह पहला अवसर था जब मुझे इस बात का अफसोस हुआ, क्योंकि अब देने के लिए मेरे पास बहुत कम आभूषण थे।

अंतिम क्षण तक तीव्र लगन से मैंने कातने और बुनने का काम जारी रखा और इस कला में थोड़ी कुशल हो गई तो मैंने रोमां रोलां की बहन के लिए ऊन कात कर, बुन कर और उसे रंग कर एक ऊनी गुलबंद तैयार किया। रोमां रोलां और उनकी बहन से अंतिम विदा लेने विलेनव जाते समय यह गुलबंद मैं अपने साथ ले जाने वाली थी।

मैं माता-पिता की सबसे छोटी बेटी थी और सबको मालूम था कि फैशन और सामाजिक प्रवृत्तियों में मेरी दिलचस्पी नहीं है। इसलिए बहुत आभूषण मुझे मिले ही नहीं थे। यह पहला अवसर था जब मुझे इस बात का अफसोस हुआ, क्योंकि अब देने के लिए मेरे पास बहुत कम आभूषण थे।

पुस्तकों की दोनों पेटियां और शायद फुटकर सामान की एक और पेटी पी. एंड ओ. के ऑफिस में समुद्र-मार्ग से भेजने के लिए पहुंचा दी गईं। मेरी योजना पेरिस और विलेनव जाने की थी और वहां से दक्षिण में मार्सेल पहुंचने की थी, जहां से मैं पी. एंड ओ. का जहाज पकड़ सकती थी।

परंपरा से अंग्रेज अपनी गहरी भावनाओं को अपने मन में दबा लेने वाले होते हैं। इसलिए वियोग के अवसर पर न तो किसी ने आंसू गिराए और न विरह के दूसरे भाव प्रकट किए– खास तौर पर मेरी मां ने। सभी शांत और कोमल बने रहे। मां और रहोना ने मुझे लंदन स्टेशन पर विदाई दी। पिताजी उस समय पेरिस में थे, इसलिए वे मुझे वहां आशीर्वाद देने आए। सभी ने यह समझ लिया था कि यह मेरी आध्यात्मिक आवश्यकता है। पिताजी ने विदाई के समय इतनी सलाह जरूर दीः "सावधान रहना।" और जिस पुरुष का बड़े-से-बड़े अंग्रेज अधिकारियों और मंत्रियों से संबंध हो, उसकी पुत्री का ब्रिटिश साम्राज्य के कट्टर विरोधी के साथ रहने के लिए जाना कोई ऐसी-वैसी बात नहीं थी।

पेरिस से मैं रोमां रोलां और उनकी बहन से अंतिम विदा लेने विलेनव गई। वे दोनों मेरे बिछुड़ते समय अपने छोटे-से मकान विला ओल्गा के दरवाजे पर एक साथ खड़े थे। उस समय का चित्र आज भी मेरे स्मृतिपट पर अंकित है।

उनके मुंह से अंतिम उद्‌गार निकला थाः "तुम कितनी भाग्यशालिनी हो!" उस समय रोमां रोलां की अनोखी आंखों में समाई प्रेमल दृष्टि को और उनके स्वर

की मीठी गूंज को मैं आज भी भूल नहीं पाई हूं।

...

और फिर मैं अहमदाबाद में थी! स्टेशन पर मुझे लेने आए लोगों को मुझे पहचानने में कोई परेशानी नहीं हुई। वे देखते ही जान गए कि मैं ही वह व्यक्ति हूं जिसे वे ढूंढ़ रहे हैं। उन्होंने अपना-अपना परिचय दिया– महादेव देसाई, वल्लभभाई पटेल और स्वामी आनंद! मेरा मन तो केवल उस क्षण पर ही केंद्रित था जब मैं महात्मा गांधी के सामने होऊंगी। फिर भी वल्लभभाई के प्रभुतापूर्ण व्यवहार की ओर मेरा ध्यान गए बिना नहीं रहा। उन्होंने महादेव की तरफ मुड़कर कहा, "तुम दोनों सामान संभालो, मैं इन्हें मोटर में ले जाता हूं।" और यह जानने से पहले कि मैं कहां हूं, मैंने देखा कि मोटर मुझे उड़ाकर ले जा रही है– और वह नव-परिचित व्यक्ति मेरे पास बैठा है। मैंने उनके सफाचट चेहरे की ओर देखा और उसकी शक्ति से मैं प्रभावित हुई, जिसमें दया और विनोद का अद्‌भुत सम्मिश्रण था। गाड़ी एक अहाते में मुड़ी और एक घर के सामने खड़ी हो गई।

मैं बोल उठी : "क्या यही आश्रम है?"

उन्होंने कहा, "नहीं, नहीं। यह अखिल भारतीय चरखा-संघ का कार्यालय है।"

जब वे बोल रहे थे, उसी समय कोई बाहर आया और खिड़की में से उनसे कुछ बात कह गया। सब बातें गुजराती में थीं, इसलिए मैं कुछ समझ नहीं सकी। जब हम फिर चले तो मैंने जिज्ञासापूर्वक उनकी तरफ देखा।

वल्लभभाई के प्रभुतापूर्ण व्यवहार की ओर मेरा ध्यान गए बिना नहीं रहा। मैंने उनके सफाचट चेहरे की ओर देखा और उसकी शक्ति से मैं प्रभावित हुई, जिसमें दया और विनोद का अद्‌भुत सम्मिश्रण था।

वे बोलेः "वे अ.भा. चरखा-संघ के मंत्री शंकरलाल बैंकर थे।"

अब हम शहर से बाहर निकले। एक पुल पर होकर साबरमती नदी के उस पार पहुंचे। मैं तीव्र उत्कंठा से खिड़की के बाहर नजर गड़ाए थी। सामने मुझे कुछ इमारतें दिखाई दीं।

मैंने उत्सुकता से पूछाः "आश्रम है?"

उन्होंने उत्तर दियाः "अभी नहीं आया।" मैंने उनके चेहरे पर विनोद का भाव पाया। कुछ क्षण के बाद उन्होंने कहा, "वे पेड़ और उनके आगे कुछ इमारतें आपको दिखाई देती हैं? वही आश्रम है!"

इस समय तक मुझे शरीर की कुछ सुध नहीं रही थी। मेरा सारा मन जिस घटना के निकट मैं पहुंच रही थी, उसी पर केंद्रित था। एक-दो मिनट में गाड़ी एक बड़े-से इमली के वृक्ष के नीचे जाकर, फाटक पर रुकी। हम उतर कर ईंटों की एक पगडंडी पर चले, जो सीताफल के बगीचे में से गुजरती थी। फिर बगीचे

का एक छोटा-सा फाटक आया। यहां से हम एक छोटे-से अहाते में घुसे। वहां एक सादा मकान खड़ा था। हम सीढ़ियां चढ़कर बरामदे में पहुंचे। मुझे हाथ में रखी पेटी जैसे बाधक लग रही थी। मैंने जल्दी से उसे अपने साथी वल्लभभाई को थमा दिया। वे उसे लेकर एक तरफ खड़े हो गए और मुझे कमरे में भेज दिया। ज्यों ही मैं अंदर पहुंची, एक थोड़े गेहुंए रंग की मूर्ति खड़ी होकर मेरी तरफ बढ़ी। मुझे प्रकाश के भान के सिवा किसी वस्तु का भान नहीं था। मैंने घुटने टेक कर उस मूर्ति को प्रणाम किया। दो हाथों ने कोमलता से मुझे उठा लिया और एक आवाज आईः "तुम मेरी बेटी बनकर रहोगी!"...

मैंने घुटने टेक कर उस मूर्ति को प्रणाम किया। दो हाथों ने कोमलता से मुझे उठा लिया और एक आवाज आईः "तुम मेरी बेटी बनकर रहोगी!"...

भौतिक जगत का मेरा भान लौटने लगा और मैंने देखा कि एक सौम्य मुख प्यार भरी दृष्टि से मुझे देखकर मुस्करा रहा है। उसमें विनोद की एक हल्की-सी झलक थी। हां, ये ही महात्मा गांधी थे; और मैं उनके पास आ पहुंची थी। वे एक छोटी-सी डेस्क के पीछे बिछी अपनी सफेद गद्दी पर जाकर बैठ गए और मैं उनके सामने फर्श पर बैठ गई।

लोग कमरे के भीतर और बाहर आने-जाने लगे। मैंने देखा, सब 'बापू' की चर्चा कर रहे हैं। यहां महात्मा गांधी कोई था ही नहीं। सिर्फ बापू थे! पिता! बापू शब्द का अनोखा अर्थ था और इस शब्द से जिसे पुकारा जा रहा था वह अपने आप में अनोखा था।

अब बापू ने कहा, "आओ, बा से मिलने चलें।" और वे मुझे बरामदे में और वहां से रसोई-घर में ले गए।

बापू ने गुजराती में विनोद करते हुए बा से मेरा परिचय कराया, परंतु मैंने समझ लिया कि वे बा से कह रहे थे कि उन्हें मेरे साथ अच्छी-से-अच्छी अंग्रेजी बोलनी होगी। बा बहुत छोटे कद की और प्रभावशाली महिला थीं। उन्होंने हाथ जोड़कर मधुरता से पूछा, "आप कैसी हैं?" परंतु वे मेरे पैरों की तरफ देखती रहीं।

बापू बोलेः "बा तुम्हारे जूतों को देख रही हैं, क्योंकि भारत में हमारा रिवाज है कि रसोई-घर में आने से पहले हम अपने जूते उतार देते हैं।"

मैं दौड़कर बरामदे में चली गई और तुरंत जूते उतार आई। बापू हंसे।

इस प्रकार मेरी नई शिक्षा आरंभ हुई।

(आत्मकथा से)

*

टिप्पणियां

राज्यसभा में न्यायमूर्ति

भारत के किसी पूर्व सर्वोच्च न्यायाधीश को या सर्वोच्च न्यायालय के किसी सामान्य जज को भी राज्यसभा का मनोनयन स्वीकार नहीं करना चाहिए याकि राज्यसभा का चुनाव नहीं लड़ना चाहिए। ऐसा कोई भी मनोनयन या कि ऐसा कोई भी चुनाव न्यायपालिका की स्वतंत्रता के बारे में गहरी शंका पैदा करता है। हो सकता है कि पहले भी ऐसा हुआ हो लेकिन अब ऐसा नहीं ही होना चाहिए क्योंकि राजनीतिक दलों का विभाजन अत्यंत तीखा व गहरा हो गया है। ऐसे में यह जरूरी हो गया है कि कोई भी जज, और सर्वोच्च न्यायाधीश तो निश्चित ही, देश-समाज की नजरों में तटस्थ, सत्यकामी और किसी भी तरह के लाग-लगाव से ऊपर दिखाई दे, माना जाए। ...आखिर क्यों हमारी न्याय-व्यवस्था के शिखर पर बैठा सर्वोच्च न्यायाधीश ऐसा कोई मनोनयन स्वीकार करे; और कोई सरकार उसे ऐसा प्रस्ताव दे ही क्यों? अगर वे चाहते हैं कि राज्यसभा में कानून के विशेषज्ञ भी आएं तो उन्हें अनुभवी वकीलों, जैसे के.परासरन या फली नरीमन या के.टी.एस. तुलसी का मनोनयन करना चाहिए। वे चाहें तो कानूनविद् उपेंद्र बक्शी को भी आमंत्रित कर सकते थे। ...राज्यसभा अच्छा काम कर रही है लेकिन उनका रास्ता अलहदा है। हमारे अधिकार और हमारी कार्य-पद्धति बहुत अलग रची गई है। न्याय-व्यवस्था के शिखर के लोग और सर्वोच्च न्यायाधीश इस रास्ते पर जाने की कैसे सोच भी सकते हैं!

- जस्टिस ए.के. पटनायक

मुझे हैरानी है कि कैसे न्यायमूर्ति गोगई, जिन्होंने कभी न्यायपालिका की स्वतंत्रता के पक्ष में सामने आने का साहस दिखाया था, इस तरह न्यायपालिका की स्वतंत्रता और तटस्थता के आधारभूत सिद्धांत को लेकर समझौता कर सकते हैं! जिस क्षण न्यायपालिका की तटस्थता के प्रति लोगों का भरोसा डिगा, जैसे ही लोगों को लगा कि जजों में एक गुट ऐसा भी है कि जो किसी तरफ झुका हुआ है या अपने लिए आगे का रास्ता बनाने में लगा हुआ है, उसी क्षण इस व्यवस्था की नींव हिल जाएगी। मैं न्यायमूर्ति चेलमेश्वर, रंजन गोगई और

मदन बी. लोकुर के साथ सार्वजनिक रूप से देश को यह बताने बाहर आया था कि भरोसे की इस नींव को खतरा है; आज मुझे लग रहा है कि यह खतरा एकदम सामने आ खड़ा हुआ है। यह भी एक कारण था कि मैंने निश्चय किया कि अवकाश प्राप्ति के बाद कोई भी पद नहीं लूंगा।

- जस्टिस कूरियन जोसेफ

पिछले कुछ समय से हवा में यह बात थी कि जो जस्टिस गोगई के बारे में आज सच होकर सामने आई है। इस लिहाज से देखता हूं तो जस्टिस गोगई का मनोनयन आश्चर्यचकित नहीं करता है लेकिन जो हैरान करता है वह यह कि यह सब इतनी जल्दी हुआ... क्या माना जाए कि हमारा आखिरी किला भी ढह गया है?

- जस्टिस मदन बी. लोकुर

अनंत जीवन की ओर

15 अप्रैल 1990 को शाम करीब सात बजे हमारे पिताजी का देहावसान हो गया। परंपरानुसार उनके पार्थिव शरीर को बीच में रखकर, एक तरफ महिलाएं और दूसरी ओर पुरुष बैठे थे। मैं भी था। सहसा मन में आया कि कल अंतिम संस्कार में तीन से पांच क्विंटल लकड़ी लगेगी। इतनी लकड़ी खर्च करना उचित होगा? जंगल समाप्त हो रहे हैं। पर्यावरण संकट में है। हमें क्या ऐसा अंतिम संस्कार करना चाहिए? तो विकल्प क्या है?

सोचते-सोचते यह बात मन में आई कि क्यों न उन्हें भूमि में गाड़कर, ठीक उनके ऊपर वृक्ष लगाया जाए? हम पांच भाइयों ने थोड़ी बहस और चर्चा के बाद यह विचार मंजूर कर लिया। लेकिन हमारी बड़ी भाभी ने चिल्लाकर कहा कि इनका (ससुरजी) तो अग्नि-संस्कार ही होगा; चाहे तो आप लोग मुझे गाड़ सकते हो। मैंने कहाः आपने हमारे पिताजी की इतनी सेवा की है कि आपको यह वीटो प्राप्त है। आप जो कहेंगी वही होगा। पर मैं इतना कहूंगा कि ऐसे अंतिम संस्कार में मैं भाग नहीं लूंगा।

दूसरे दिन शवयात्रा निकली। मैंने उन्हें घर से ही प्रणाम किया। दूसरे दिन मैं बाबा आमटे से मिलने गया। तब वे बड़वानी के पास कसरावद गांव में रहने लगे थे। उन्होंने कहाः पिताजी को छोड़ आए? मैंने उन्हें अपनी सारी बात बताई। बाबा बोलेः तुमने तो अपने मन से और विचार से यह सब किया किंतु हम आनंदवन में, जहां उनका कार्यक्षेत्र था, ऐसा ही करते हैं। एक लाश पर चार झाड़ लगाते हैं। कभी-कभी विदेशों से भी लाशें आती हैं। इस विधि से अंतिम संस्कार करने से मनुष्य के सारे अवयवों, यहां तक कि बोनमैरो का भी सार्थक उपयोग हो जाता है। मुझे लगा कि मैं केवल अकेला ही सिरफिरा नहीं हूं।

एक दिन बाबा आमटे का फोन आया। मैं उनके पास पहुंचा तो उन्होंने

कहा कि तुम एक बहादुर आदमी हो, तुमने लोकोपवाद की परवाह न करते हुए, केवल विचार के बल पर अपने पिताजी के अंतिम संस्कार में भाग नहीं लिया। इसलिए मेरा अनुरोध है कि तुम इसे एक अभियान का स्वरूप दो। इस विधि से अंतिम संस्कार करने से दुनिया का भला होगा। रोज लाखों लोग मरते हैं। वहां पेड़ लगेंगे तो दुनिया हरी-भरी और अधिक रहने लायक हो सकेगी। काफी सोचने के बाद मैंने इसका नाम 'वृक्ष-संस्कार' रखा। इस पूरे विचार को लिखकर मैं लोगों में बांटने लगा। मैं कई लोगों से मिला। उनकी राय ली। मैंने पाया कि हिंदू समाज में केवल अग्नि-संस्कार नहीं होता है, वहां जलप्रवाह के साथ-साथ 'भूमि-संस्कार' भी होता है। मृत छोटे बच्चों को गाड़ते हैं। बड़े संतों-महंतों को भी समाधि दी जाती है। गहरे अध्ययन के बाद मैंने पाया कि हिंदू समाज में जलाए जाने वालों की तादाद कम है। केवल सवर्ण हिंदू शव को जलाते हैं। जिनको हम निचली जातियां कहते हैं, उनको यह अधिकार नहीं है।

1995 के आसपास की बात है। कसरावद गांव के एक वृद्ध हरिजन ने बाबा आमटे से अपनी इच्छा प्रकट की कि मरणोपरांत मेरा अग्नि-संस्कार किया जाए। बाबा स्वयं अग्नि-संस्कार के विरोधी थे, किंतु हरिजन भाई की उत्कट इच्छा को देखते हुए, उनके परिजनों को बुलाया और स्वयं उपस्थित रहकर उनका अग्नि-संस्कार करवाने में मदद की। एक सामाजिक क्रांति का आगाज हुआ। ब्राह्मणों की कुछ उपजातियां, बैरागी, स्वामीपुरी, बौरनाथ आदि ऐसी हैं जिनमें अग्नि-संस्कार नहीं होता। दक्षिण भारत में लिंगायत भी अग्नि-संस्कार नहीं करते। बंगाल में कुछ ऐसी जातियों के बारे में भी मैंने ऐसा सुना है। आज जनसंख्या का विस्तार, नगरीकरण का प्रसार, खुली जगह की मुश्किलें, सबने मिलकर अंतिम संस्कार को एक समस्या बना दिया है। जापान में, जहां भूमि-संस्कार ही होता है, वहां बहुमंजिला कब्रिस्तान बनाने की बात चली है, क्योंकि आबादी बढ़ रही है। लोगों को रहने की जमीन नहीं मिल रही है तो कब्रिस्तान बनाना आसान नहीं है।

मैं करीब 40 सालों से वृक्ष-संस्कार की बात फैलाने में लगा हूं। बाबा आमटे का पूरा समर्थन मुझे मिला। बाबा आमटे और साधना ताई दोनों का मरणोपरांत वृक्ष-संस्कार ही हुआ। हेमलकसा, जहां बाबा आमटे के पुत्र प्रकाश आमटे और उनकी पुत्रवधु मंदाकिनी आमटे कार्यरत हैं, वहां वे भी वृक्ष-संस्कार का काम कर रहे हैं। मंदाकिनी वृक्ष-जीवन संस्कार परिषद की सदस्य भी हैं।

वृक्ष-संस्कार करने के लिए भी जमीन की बड़ी समस्या है। मैंने सोचा कि सरकारी वन-विभागों को यह काम

हाथ में लेना चाहिए। उनका तो काम ही वनों को बढ़ाते जाना है। वन विभाग को सरकारी निर्देश हो कि वे शव वाहन रखें और जहां किसी की मृत्यु हो, वहां वाहन भेजकर शव वन में ले आएं। सम्मान व संस्कार के साथ उनका वृक्ष-संस्कार हो। वन का संरक्षण व संवर्द्धन दोनों सधेगा और परिजनों को अंतिम संस्कार के लिए एक बनी-बनाई व्यवस्था मिल जाएगी।

मैं मानता हूं कि निकट भविष्य में वृक्ष-संस्कार को समाज स्वीकार करेगा। 'वृक्ष-संस्कार' से मृत्यु भी सार्थक हो जाती है, मृत व्यक्ति न केवल अमर हो जाता है बल्कि वह अनंत भी हो जाता है। वह जिस वृक्ष के नीचे सोया है, उस वृक्ष के बीज गिरते हैं, बढ़ते हैं, फलते हैं। बीज वृक्ष बनेंगे और यह प्रक्रिया सृष्टि के अंत तक चलती रहेगी। हमारा परिजन अनंत काल तक जीवित रहेगा। वरिष्ठ सर्वोदय कार्यकर्ता-कवि श्याम बहादुर 'नम्र' ने, जिनका भी वृक्ष-संस्कार हुआ, अपने जीवन-काल में लिखा थाः **मर कर भी यह देह काम आ जाए— मरे हुए को भी जीवित समझा जाए— मणींद्र का यह विचार उत्तम है कि मृतक को गाड़ उस पर वृक्ष लगाया जाए।**

कैसा अद्‌भुत होगा जब हर वृक्ष हमारे किसी परिजन का जीवंत स्मारक होगा— जीवंत भी और जीवनदायिनी भी!

० मणींद्र कुमार

पत्र

जनवरी-फरवरी का अंक एक अप्रतिम, भावपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक अंक बना है– 'गांधी-मार्ग' की परंपरा में एक और विशिष्ट अंक! फैज साहब की अमर नज्म 'हम देखेंगे!' को नये अनुवाद के साथ देने के लिए आपका साधुवाद। इससे अंक की शोभा बढ़ गई है। मैं आपका निजी तौर पर शुक्रगुजार हूं।

-डेनियल मझगांवकर, वडोदरा (गुजरात)

'गांधी-मार्ग' को पढ़ना एक अलग ही अनुभव है। कहूं तो आपके हर अंक का आधारभूत आलेख तो वर्षों पुराना होता है - अब तो गांधी-150 का काल है न! उस गांधी को आप इतना ताजा और आज का बना देते हैं कि कई बार देखना पड़ता है कि यह कब, किस अवसर पर कहा या लिखा गया है जो इतना ताजा व समीचीन लगता है! ऐसा ही भाव तब भी मन में आया जब एक बहुत पुरानी पत्रिका 'बालवाणी' में मैंने दिनकरजी की 'भगवान के डाकिये' शीर्षक यह कविता पढ़ीः

पक्षी और बादल
भगवान के डाकिये हैं
जो एक महादेश से
दूसरे महादेश को जाते हैं।
हम तो समझ नहीं पाते हैं
मगर उनकी लाई चिट्ठियां
पेड़, पौधे, पानी और पहाड़
बांचते हैं।
हम तो केवल यह आंकते हैं
कि एक देश की धरती
दूसरे देश को सुगंध भेजती है
और वह सौरभ हवा में तैरते हुए
पक्षियों के पांखों पर तिरता है
और एक देश का भाप
दूसरे देश में पानी बन कर
गिरता है।

यह डाकिया तो आज भी रोज पत्र ला रहा है। हम ही पढ़ना भूल गए हैं। मैंने पढ़ा तो ऐसा लगा जैसे अनुपम मिश्र जी की कल ही लिखी कोई पंक्ति पढ़ रहा हूं। आप उचित समझें तो इसे 'गांधी-मार्ग' के पाठकों से बांट सकते हैं।

-विनोद मल, राजमहल (कर्नाटक)

अब आपको जो पत्र लिखता हूं उसे 'जीवन-संवाद' का नाम दिया है मैंने। मेरे लिए 'गांधी-मार्ग' यही काम कर रहा है। अपना जीवन भी एकदम किनारे आ पहुंचा है तो जीवन-संवाद ही बचा है जो मैं आपसे कर सकता हूं। निराश नहीं हूं लेकिन बहुत घुटन होती है, मन का कोना-कोना खाली

लगता है। ऐसे में 'गांधी-मार्ग' का ही इंतजार करता हूं कि वह आए तो कोई खिड़की खुले!

बंद करो मत द्वार मलय का झोंका आने दो / यों तो हर ऋतु को मधुमास नहीं कहते/ हर उत्सव के हर पल को उल्लास नहीं कहते / राह वही है राही तो बस चलते हैं / नयनों में सतरंगे सपने पलते हैं/ इनके सपनों को कुछ तो शीतलता पाने दो/ बंद करो मत द्वार मलय का झोंका आने दो।

बस, इतना करना भाईजी कि 'गांधी-मार्ग' का प्रकाशन बंद मत करना!

-खुशाल सिंह कोलिय,
फतेहपुर सीकरी, आगरा (उत्तरप्रदेश)

'गांधी-मार्ग' में और दूसरी पत्र-पत्रिकाओं में भी आपके लेख पढ़ कर प्रेरणा पाता हूं। जैसलमेर में आपको सुना भी था और उसकी परितृप्ति आज भी बनी हुई है। सत्ता-वर्ग बहुमत के बल पर देश को जिस तरह चला रहा है और देश जिस तरह अनचाहे उधर घिसटता जा रहा है, वह न नागरिक के लिए श्रेयस्कर है और न देश के लिए शुभ। गांधी और संत विनोबा की दृष्टि से जब देखता हूं तो लगता है कि हमारी तीनों प्रक्रियाएं- विरोध करना, राज्य का दमन सहना और उससे डरना- कोई रास्ता नहीं बनाती हैं। हमें लोक-शक्ति का कोई नया ही स्वरूप सोचना होगा। नागरिक जीवन में प्राथमिक स्तर पर कैसे नव-संचार हो? कभी बीकानेर में श्री मोहनलाल मोदी थे, जैसमलेर में श्री भगवानदास माहेश्वरी थे, आबू में मातृश्री विमला ठकार थीं, सिरोही में श्री गोकुलभाई भट्ट थे, जयपुर में श्री सिद्धराज ढड्ढा, श्री जवाहरलाल जैन जैसे लोग थे जो लगातार नागरिक संचय व सिंचन का काम करते थे। उससे बनी ताकत थी कि देश अब तक गांधी-मार्ग का संधान करता चला है। गांधी-विनोबा की वह पूंजी अब क्षीण हो रही है। ऐसे में आप जैसों की भूमिका ही है जो रास्ता बता सकती है।

-दीनदयाल ओझा, जैसलमेर (राजस्थान)

'हे राम!' अंक के बारे में अब लिख रहा हूं तो इसलिए नहीं कि मैंने इसे अब पढ़ा है बल्कि इसलिए कि अब मैं उसके धक्के से उबरा हूं! पूरा अंक पढ़कर मन बहुत उदास हो गया था। बहुत समय तक मन में यही भाव बन रहा कि उस आखिरी दौर में गांधीजी को हमने किस तरह अकेला व अरक्षित बना दिया था। न सरकार उनके साथ थी और न समाज उनके साथ था। उनकी प्रार्थना-सभा में जो लोग आते थे वे दिल्ली के अलग-अलग हिस्सों में जा कर गांधीजी का बताया काम भी कर रहे थे, ऐसा कोई विवरण तो न आपने दिया है और न मैंने कहीं और पढ़ा है। हत्यारे जब अपना दांव खोजने में लगे हैं तब आपने जगह-जगह लिखा है कि अब गांधीजी के जीवन के इतने दिन

बाकी बचे थे, तो उसे पढ़ कर मैं विचलित हो जाता था। लेकिन अब जब आपके अंक से मैं अलग निकल पाया हूं तो जो बात मेरे भीतर स्थिर होती लगती है वह यह है कि इनके सबके बीच गांधीजी कितने शांत, एकाग्र और दृढ़ मिलते हैं! वे अपनी सरकार से भी, पाकिस्तान की सरकार से भी और हिंदू और मुसलमान समाज से भी अपनी बात कहते ही जाते हैं। न किसी सवाल से खुद बचते हैं, न किसी को बचाते हैं। इतनी आंतरिक शक्ति हो तभी तो आप युग पर अपनी छाप छोड़ सकते हैं। आज वक्ती राजनीति करने वालों को देखता हूं तो मुझे गुलीवर के बौने याद आते हैं - कद भी बौना और मन भी बौना!

-संजय कुमार, कोलकाता (बंगाल)

हमारा देश अजीब बनता जा रहा है या बनाया जा रहा है? जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिन पर बाल-दिवस नहीं, 'ठरकी-दिवस' का हैशटैग सारे दिन 'ट्रेंड' करता रहा। गांधीजी के जन्मदिन पर 'गोडसे अमर रहे!' के नारे लगाए गये। गोडसे की पुण्यतिथि अब खुलेआम मनाई जा रही है। गुजरात के एक स्कूल में, परीक्षा में बच्चों से पूछा गया कि बताओ, गांधीजी ने कैसे आत्महत्या की थी? क्या ऐसा सवाल गलती से प्रश्नपत्र में शामिल हो गया था? ओडिशा में एक बुकलेट ऐसी बनी व बंटी कि जिसमें गांधी की मौत को एक दुर्घटना बताया गया था। स्वामी विवेकानंद की प्रतिमा के साथ जेएनयू परिसर में छेड़छाड़ की गई और उसकी प्रतिक्रिया में 'जेएनयू बंद करो!' के नारे लगे। ...तो क्या हमारे सारे महान लोग गलती से अब तक महान माने जा रहे थे, और अब हमें उनका सही परिचय दिया जा रहा है? समझ में नहीं आता है कि हमारा भारतीय समाज अज्ञानता, तर्कहीनता, मूर्खता, आलस्य, अहंकार और महत्वाकांक्षा के इस गड्ढे में स्वेच्छा से क्यों जा रहा है?

-किशनगिरि गोस्वामी,
रामगढ़-जैसलमेर(राजस्थान)

*

और अंत में!

देश ने ऐसा कुछ पहले देखा नहीं था, दुनिया ऐसे हालातों से पहले कभी गुजरी नहीं थी। लोग अपनों से कभी इस तरह सशंकित नहीं हुए थे; लोग अपनों से इस तरह कभी जुदा नहीं हुए थे। सब कुछ था फिर भी कुछ भी नहीं था। जीवन तो था लेकिन सब ओर सनसनी मौत की थी, और वह मौत ही हकीकत बनती जा रही थी। कमरों में लगने वाला ताला मुल्कों पर लगाया जा रहा था लेकिन लगता था कि कोरोना-दैत्य को हर ताले की चाभी का पता था। ऐसा पहले भी हुआ था लेकिन इतना व्यापक नहीं हुआ था। यह तो सही अर्थों में अंतरराष्ट्रीय है। हमारी आधुनिक सभ्यता के सारे स्वर्णिम शिखर सबसे पहले धूल-धूसरित हुए। आंसू भरी आंखों से ब्रिटेन की वह डॉक्टरनी जो कह रही थी वह जैसे सारी दुनिया की बात थीः "हम कर तो कुछ नहीं पा रहे हैं लेकिन देखिए, हम मोर्चा छोड़ कर भाग भी नहीं रहे हैं!"

आज भी सब कुछ वैसा ही है। जिंदगी के नहीं, मौत के आंकड़े ही हैं जो हम एक-दूसरे के साथ बांट रहे हैं। इसलिए 'गांधी-मार्ग' का यह अंक प्रेस जा कर भी छप नहीं सका। छपा नहीं, सो आपको गया नहीं। अब यह ई 'गांधी-मार्ग' है। पढ़ें भी और लौटती मेल से अपनी राय लिखें भी। अगला अंक शायद छप कर जा सकेगा।

लेकिन कहने और देखने को इतना ही कुछ नहीं है। बहुत कुछ और भी हैः पहले से कहीं ज्यादा शांत नगर-मुहल्ले हैं, कई गुना साफ पर्यावरण है, धुली हवा, पारदर्शी पानी, अपनी चमक बिखेरते जंगल, आजाद जानवर, चहकते पंछी! हिमालय की देवतुल्य चोटियां बहुत दूर से साफ दिखाई देने लगी हैं। हमने जिनका जंगल छीन लिया था वैसे कई पशु-पंछी हमारे नगरों की सड़कों पर दिखाई देने लगे हैं। यह सारा काम कौन कर रहा है? देश तो बंद है, सर्वशक्तिमान सरकारें कमरों में कैद, आपस में बातें कर रही हैं; तो फिर कौन है जो यह सब कर रहा है? हम अपना विकास, विज्ञान और विशेषज्ञता और अपनी मशीनें ले कर जैसे ही हटे, प्रकृति अपने सारे कारीगरों को साथ ले कर मरम्मत में जुट गई। जिन बिगाड़ों को हमारे विशेषज्ञों ने हमारी किस्मत बता कर किनारा कर लिया था, आज वे सारे जैसे रास्ते पर आ रहे हैं; और आप हिसाब करें कि हुए कितने दिन हैं तो कुल जमा 70 दिन! इतने ही वक्त में प्रकृति ने बहुत कुछ झाड़ डाला है, पोंछ लिया है, रोप दिया है। उसने हमें बता दिया है कि तुम अपना हाथ खींच लो, मैं अपना हाथ बढ़ाती हूं। इसलिए पीछे नहीं लौटना है, रास्ता बदल कर तेजी से चलना है- आगे! गांधी का 'हिंद-स्वराज्य' इसका ही ब्ल्यू-प्रिंट है। उतना ही और वैसा ही विकास हमारे हिस्से का है जितना और जैसा विकास पर्यावरण के चेहरे पर धूल न मलता हो। फिर बंद करनी होगी सुविधा की यह अंधी दौड़, कारों-विमानों-कारखानों का यह जुलूस, सच को झूठ और झूठ को सच करने वाली विज्ञापनबाजी, दो लगा कर दस पाने की भूख जगाने वाला यह आर्थिक छलावा और लगातार हमारी जरूरतें बढ़ाते चलने वाला यह बाजार! पूंजी को भगवान बताने वाला और भगवान से पूंजी कमाने वाला, लोभ और भय के पहिए पर दौड़ने वाला यह विकास नहीं चाहिए। क्या कोरोना इनसे पैदा हुआ है? नहीं, कोरोना विषाणु है जो प्रकृति से पैदा हुआ है। आगे भी होगा किसी दूसरे नाम से। लेकिन कोरोना से लड़ाई में हम जितने कमजोर और असहाय साबित हुए हैं वह इन्हीं कारणों से। यह बीमार विज्ञान है, यह अंधा विकास है, यह अमानवीय संस्कृति है, यह डगमगाती सभ्यता है। इससे निकलना होगा, इसे बदलना होगा, इसे अस्वीकार करना होगा। वह छोटा-सा, अनमोल शब्द फिर से सीखना व जीना होगा जिससे गांधी के सत्याग्रह की शुरुआत होती है- नहीं!

नहीं, भय नहीं; नहीं, लोभ नहीं; नहीं, हिंसा नहीं; नहीं, वह नहीं जो सबके लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं है। कोरोना इतना जगा जाए हमें तो वह भगवान का भेजा दूत ही कहलाएगा।

- **कु.प्र.**

क गहलोत
ी, राजस्थान

निरोगी राजस्थान
समृद्ध राजस्थान

पहला सुख निरोगी काया

'निरोगी राजस्थान'

निरोगी राजस्थान अभियान के मुख्य बिन्दुः-

- जनसंख्या नियंत्रण
- वृद्धावस्था में स्वास्थ्य की देखभाल (जेरियेट्रिक सेंटर)
- महिला स्वास्थ्य (एनीमिया, कुपोषण, स्तन व बच्चेदानी का कैंसर, माहवारी)
- किशोरावस्था स्वास्थ्य (एनीमिया, कुपोषण, मोटापा, माहवारी स्वच्छता)
- टीकाकरण एवं वयस्क टीकाकरण (सम्पूर्ण टीकाकरण)
- संचारी रोग (मौसमी बीमारियां)
- गैर संचारी रोग (जीवनशैली आधारित - मोटापा, मधुमेह, बीपी, मनोरोग, हृदयरोग, पक्षाघात, कैंसर, फेफड़ों से संबंधी रोग)
- खाद्य पदार्थों में मिलावट की रोकथाम
- व्यसन रोग (शराब, ड्रग्स, तम्बाकू)
- प्रदूषण नियंत्रण

- क्या हम अखबार पढ़ते हैं? हां, हम पढ़ते हैं किंतु क्या आप यह भी मानते हैं कि आप जो पढ़ रहे हैं वही संपादक के वास्तविक विचार हैं?
- मैं समझता हूं, नहीं! लेखकों के स्वतंत्र विचार प्रकाशित नहीं किए जाते हैं। जो–कुछ प्रकाशित किया जाता है, वह कुछ और ही होता है।
- समाचार–पत्रों पर कुछ नियंत्रण रखना आवश्यक है, ऐसा कहने वालों से मैं बहस नहीं करता हूं। लेकिन यह याद रखना चाहिए कि ऐसे नियंत्रण का मतलब विवेक और मर्यादा को भुला देना नहीं होता है।
- नियंत्रण लगाने का अर्थ है लोगों को मिथ्या या भ्रामक विचारों में आसक्त होने के लिए प्रोत्साहन देना।
- मेरी लड़ाई अवांछनीय नियंत्रण के विरुद्ध है।
- मैं सरकार से कहता हूं : हमसे वैसा ही उदारतापूर्ण व्यवहार कीजिए जैसा आप इंग्लैंड के लोगों के साथ करते हो। हम भारतीय मक्कारों की कौम नहीं हैं। हम शिक्षित, शिष्ट और सभ्य लोग हैं।
- जब कभी हमारे सम्मुख राजनीतिक संकट आए तब हम जो कुछ अनुभव करते हैं और कहना चाहते हैं उसे स्पष्ट शब्दों में कहने से हमें कदापि न झिझकना चाहिए।
- साफ बात कहने और अपने कार्य का समर्थन सच्चाई से करने पर यदि सरकार हमें दंड दे तो ठीक है, उसे दंड देने दीजिए।
- ज्यादा–से–ज्यादा यह होगा कि वे हमारे शरीरों को ले लेंगे। बहुत अच्छा, यदि वे हमारे शरीरों को ले लेंगे तो हमारी आत्माएं मुक्त हो जाएंगी।

(24 जून 1916 : समाचार–पत्र कानून 1910 के मनमाने इस्तेमाल के संदर्भ में)